हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

'शक्ति-पीठ' काशी

'काली-मठ' में
सिह पर आसीन भ० काली

'काली-मठ' का
बलि-कुण्ड

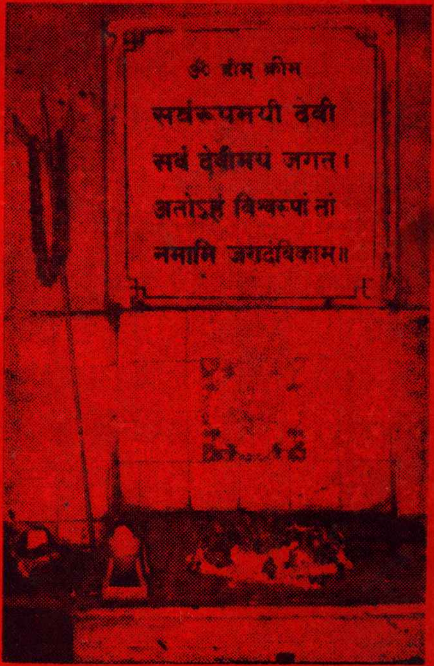

यह प्रति ८) रु० । वार्षिक मूल्य ४५) रु०

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ४८] मार्गशीर्ष-पौष २०४६ वि०—दिसम्बर, ८९-जनवरी, १९९० [संख्या ९-१०

१ शक्ति-पीठ काशी (तन्त्र-शास्त्र, पीठ-निर्णय और पुराणादि के उल्लेख) १

२ काशी का 'काली-मठ' : 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए० ३

३ काली-मठ के सिद्ध महा-पुरुष : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल ५

४ काली-मठ की गौरव-मयी परम्परा : श्री अशोककुमार श्रीवास्तव ९

५ अति विस्तृत शाक्त-सम्प्रदाय : स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज १०

६ महान् साधक श्रीनारायण दीक्षित : पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर ११

७ सर्व-जीव-हितकारी, महान् शाक्त-सम्प्रदाय : स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज १३

८ स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल १४

९ शक्ति-उपासना : स्वामी ज्ञानानन्द जी १५

१० 'कुल-ज्योति' पं० कन्हैयालाल दीक्षित : श्री रामरख सहगल १६

११ पं० कन्हैयालाल दीक्षित के उद्‌बोधक निबन्ध २२-४०

- **१ शक्ति की उपासना ···२२**
- **२ शक्ति-साधना—एक सिद्ध प्रयोग ···२३**
- **३ शाक्तों का प्रधान धन ···२७**
- **४ निस्तार का मार्ग ···३०**
- **५ कौल की सरल साधना ···३२**
- **६ कौल का विराट् स्वरूप ···३६**
- **७ साधना-रहस्य ···३८**
- **८ सन्ध्या-कर्म का रहस्य ···३९**
- **९ दीक्षा-रहस्य ···४०**

१२ काशी के छः तान्त्रिक आचार्य : म० म० श्री गोपीनाथ कविराज ४१

१३ काशी के कतिपय सिद्ध सन्त : पं० जगन्नारायण देव शर्मा 'कवि-पुष्कर' शास्त्री ४३

१४ मां अन्नपूर्णा का काशी आगमन ७२

१५ 'शक्ति-पीठ' काशी के यात्रा-क्रम : श्री पं० कुबेरनाथ सुकुल ७४

१ जल-तीर्थों की यात्रा ···७४, २ देवी-पीठों की यात्रा···७६, ३ भैरव-यात्रा···७६

१६ पञ्च-कोशी यात्रा : श्री पं० कुबेरनाथ सुकुल ७७

१७ पञ्च-कोशी यात्रा का रहस्य : गुप्तावतार बाबाश्री ८०

१८ 'शक्ति-पीठ' काशी के देवी-स्थान : पं० कालीप्रसाद मिश्र के सौजन्य से ८१

१९ 'रुद्र-यामल तन्त्र' में 'शक्ति-पीठ' काशी : श्री ऋतशील शर्मा ८४

२० सम्पादकीय ८६

•

काशी के छः तान्त्रिक आचार्य

[म० म० 'पद्म-विभूषण' पं० श्री गोपीनाथ कविराज के लेख के आधार पर]

काशी में कई तान्त्रिक आचार्य हुए हैं, पर इनमें दो नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं—१ भास्कर राय भारती, २ पण्डित नीलकण्ठ चौधरी 'चातुरध्वरिक'।

१. **भास्कर-राय** का समय प्रायः १६वीं शताब्दी मानते हैं। प्रसिद्ध है कि भास्कर राय काशीस्थ भट्ट-वंशीय महा-पण्डित नारायण भट्ट के सम-कालीन थे।

भास्कर राय ने बहु-संख्यक पुस्तकों की रचना की, परन्तु इनकी मुख्य कीर्ति है—तन्त्र-शास्त्र-सम्बन्धी 'सेतु-बन्ध'। ये •पूर्णाभिषिक्त सिद्ध महा-पुरुष थे। इनकी प्रतिष्ठा इनके जीवन-काल में ही भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में फैल गई थी।

पिता का नाम था गम्भीर राय दीक्षित और माता का नाम था कोणाम्बिका। भास्कर राय का दीक्षा-नाम था भासुरानन्द या भास्करानन्दनाथ। इनके दीक्षा-गुरु का नाम नृसिंह शुक्ल था। इनकी दीक्षा सूरत नगर में हुई थी और पूर्णाभिषेक भी वहीं हुआ था। आचार्य विद्यारण्य के समान इन्हें भी श्रीदेवी के दर्शन होते थे। ये श्रीविद्या के उपासक थे और इन्होंने श्रीविद्या-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया था। इन्होंने दीर्घ-काल-पर्यन्त वाराणसी में अवस्थान किया। इनके रचित तन्त्र-विषयक ग्रन्थों के नाम निम्न-लिखित हैं—

१. भावना-उपनिषद् का भाष्य, २. कौल-उपनिषद् का भाष्य, ३. त्रिपुरा-उपनिषद् का भाष्य, ४. ललिता-सहस्रनाम का 'सौभाग्य-भास्कर' भाष्य, ५. सौभाग्य-रत्नाम्बर की टीका—'सौभाग्य-चन्द्रोदय', ६. नित्या-षोडशिकार्णव की टीका—'सेतु-बन्ध', ७. दुर्गा-सप्तशती की टीका—'गुप्तवती', ८. परशुराम-कल्पसूत्र को वृत्ति 'रत्नालोक', ९. वरिवस्या-रहस्य, १०. वरिवस्या-प्रकाश तथा ११. नाथ-नवरत्नमाला-मञ्जूषा इत्यादि। प्रायः ये सभी ग्रन्थ भगवती ललिता की आराधना के मार्ग-दर्शक हैं। इनके अध्ययन एवं अनुसरण से वे साधक पर तत्काल प्रसन्न होती हैं।

२. **पण्डित नीलकण्ठ** का प्राकट्य-काल ईसा की १७वीं शताब्दी है। इन्होंने महा-भारत पर 'भारत-भाव-प्रदीप' टीका लिखी। तन्त्र-शास्त्र में इन्होंने 'शिव-ताण्डव' की टीका 'अनूपाराम' १६८० ई० में लिखी थी। इसमें अनेक तन्त्रों का विस्तृत विवरण है।

पिता का नाम था गोविन्द सूरि। नीलकण्ठ काशी में रहते थे, परन्तु इनके पूर्व-पुरुष गोविन्द महाराष्ट्र के कुरपरनगर या गोपर गाँव में निवास करते थे। यह स्थान गोदावरी-तट पर अवस्थित था। गोत्र गौतम था और इनकी माता का नाम फुल्लाम्बिका था। इनके तीन अनुज थे, जिनके नाम क्रमशः शिव, कृष्ण और त्र्यम्बक थे। इनके पुत्र का नाम गोविन्द तथा पौत्र का नाम शिव दीक्षित था। ये गोदावरी-तट-वर्ती प्रतिष्ठान (पैठण) नामक स्थान में रहा करते थे और 'धर्म-तत्त्व-प्रकाश' का निर्माण भी इन्होंने यहीं किया था। बीकानेर-नरेश अणूसिंह नीलकण्ठ के आश्रय-दाता थे। इनकी ही प्रेरणा से 'शिव-ताण्डव' की टीका लिखी गई थी, इसलिए इस टीका का नाम 'अनूपाराम' रखा गया था।

तन्त्र-शास्त्र के अतिरिक्त वेदान्त तथा पुराण-इतिहासों में भी नीलकण्ठ के विभिन्न ग्रन्थों का परिचय मिलता है। इन ग्रन्थों में 'वेदान्त-कतक' मन्त्र-शारीरक, शिवाद्वैत-निर्णय, मन्त्र-भागवत टीका,

नाम-मन्त्र-रहस्य-प्रकाशिका, मन्त्र-रामायण, काशी-खण्ड तथा गणेश-गीता की टीका प्रधान हैं।

३. **राघव भट्ट** का नाम ईसा की १५वीं शताब्दी में समग्र भारत में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। ये महा-राष्ट्रीय ब्राह्मण थे। गोदावरी-तट पर 'जन-स्थान' अथवा 'नासिक' इनका आदि-निवास रहा। इनके पिता पृथ्वीधर भट्ट स्वदेश त्याग कर काशी में आए। राघव भट्ट का जन्म काशी में ही हुआ। पिता शास्त्रों के अलौकिक पण्डित थे। मीमांसा में भाट्ट मत के ऊपर और व्याकरण में पातञ्जल महा-भाष्य के ऊपर इनका पूर्ण अधिकार था।

राघव भट्ट ने 'शारदा-तिलक' तान्त्रिक ग्रन्थ की 'पदार्थादर्श' नामक टीका की रचना काशी में ही संवत् १५५० (१४९३ ई०) में पूर्ण की थी। वेदान्त, भाट्ट मीमांसा, गणित, साहित्य, काम-शास्त्र, अग्नि-शास्त्र, आयुर्वेद, कला तथा सङ्गीत आदि में भी ये निष्णात थे। शाकुन्तल, राम-चरित, मालती-माधव आदि ग्रन्थों की टीका भी राघव ने की।

४. **महीधर**—ये १६वीं शताब्दी में हुए। इनका नामान्तर 'महीदास' या 'भूराल' भी है। ये पहले अहिच्छत्र में वास करते थे तथा वत्स-गोत्रीय ब्राह्मण थे। 'अहिच्छत्र' का वर्तमान नाम रामनगर है, जो बरेली से बीस मील की दूर पश्चिम की ओर है। पिता का नाम पुनु भट्ट था।

महीधर वैदिक तथा तान्त्रिक विद्या में समान रूप से अधिकार रखते थे। वेद की 'शुक्ल-यजुर्वाजसनेयी संहिता' के 'वेद-दीप' भाष्य, 'चरण-व्यूह' की टीका और 'कात्यायन-सूत्र' की टीका बना-कर इन्होंने वैदिक मण्डली में प्रसिद्धि अर्जित की। तन्त्र-शास्त्र में इनका 'मन्त्र-महोदधि' विख्यात है। इसकी टीका 'नौका' भी स्वयं ही बनाई। इसका रचना-काल संवत् १६४५ (१५८८ ई०) है। 'योग-वासिष्ठ-सार-विभूति' इन्हीं की कृति है। पुरुषोत्तम-रचित 'विष्णु-भक्ति-कल्प-लता' पर भी टीका बनाई, जिसका उस समय के भक्ति-साहित्य के ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा था।

महीधर भट्ट स्वयं ही काशी आए थे। उनके पुत्र कल्लन बाल्यावस्था में उन्हीं के साथ यहाँ आए। पर-वर्ती वंश-धर काशी में ही स्थायी रूप से वास करने लगे। महीधर के पुत्र कल्लन ने 'बाल-तन्त्र' पुस्तक लिखी, जो आयुर्वेद का ग्रन्थ है।

५. **श्री निवास भट्ट गोस्वामी (विद्यानन्दनाथ)** तन्त्र-शास्त्र के विशेषज्ञ थे। ये दक्षिण भारत की काञ्ची नगरी के दक्षिण में स्थित अनन्त ग्राम से तीर्थ-यात्रा-प्रसङ्ग में जालन्धर आए थे। वहाँ सच्चिदा-नन्द (सुदूराचार्य) नामक तान्त्रिक सिद्ध पुरुष से दीक्षा ली, जो 'ललितार्चन-चन्द्रिका' के रचयिता थे। दीक्षा के बाद श्रीनिवास का गुरु-प्रदत्त नाम हुआ 'विद्यानन्दनाथ'। गुरु के आदेश से विद्यानन्द काशी आकर रहने लगे। आगम-दर्शन के ऊपर इन्होंने चार ग्रन्थ निर्माण किए—१. भैरवार्चा-पारिजात, २. सौभाग्य-रत्नाकर (३६ अध्याय; त्रिपुरा-उपासना-विषयक), ३. सपर्या-क्रम-कल्प-वल्ली (चण्डी-उपा-सनाविषयक) और ४. शिवार्चन-चन्द्रिका। चौथे ग्रन्थ के आधार पर इन्हीं के पौत्र जनार्दन ने 'मन्त्र-चन्द्रिका' ग्रन्थ का निर्माण किया।

श्रीनिवास का पाँचवाँ ग्रन्थ 'सौभाग्य-सुभगोदय' है। इनके पुत्र जगन्निवास भी तान्त्रिक थे।

६. **शम्भु भट्ट** बालकृष्ण भट्ट के पुत्र थे। ये काशी के प्रसिद्ध मीमांसक खण्डदेव के शिष्य थे। इनकी उपाधि 'कवि-मण्डन' थी। ये १६वीं शताब्दी के अन्त में हुए। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है—खण्डदेव-रचित भट्ट-दीपिका की टीका 'प्रभावलि'। संन्यास ग्रहण करने के बाद ये 'शङ्करानन्द' नाम से प्रसिद्ध हुए थे। इनके संन्यास-गुरु का नाम रामानन्द सरस्वती था, जिनकी 'काशी-खण्ड' की व्याख्या अत्यन्त प्रसिद्ध और विद्वत्ता-पूर्ण है।

९६ वर्ष की ऋषि-अवस्था में कम्पित कर-कमलों द्वारा लिखित :

काशी के कतिपय सिद्ध सन्त

पण्डित जगन्नारायण देव शर्मा 'कवि-पुष्कर' शास्त्री

[वैशाख शुक्ला पूर्णिमा, सं० २०४६ शनिवार २० मई, १९८९ को पुस्तिका-रूप में यह चरितावली वयोवृद्ध ऋषि-कल्प परम पूज्य शर्मा जी ने अपने काँपते हुए हाथों से लिखकर पूर्ण की एवं तत्काल ही 'चण्डी' को समर्पित कर दी। 'राष्ट्र-भाषा' हिन्दी के आदि-परिष्कर्ता आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम-कालीन मनीषी 'कवि-पुष्कर' शास्त्री जी ने ९६ वर्ष की, अन्तिम साँस तक कर्मठता-पूर्ण, आयु प्राप्त की और १३ अगस्त, १९८९ (श्रावण शुक्ला एकादशी, सं० २०४६) को श्री शिव-लोक को महा-प्रयाण किया। आपके द्वारा काशी के २५ महा-पुरुषों की जो पुण्य चरितावली विलक्षण स्मृति-शक्ति के सहारे प्रस्तुत हुई है, भक्त पाठकों को अभिभूत कर देगी, इसमें सन्देह नहीं—सं०]

आज हम २५ ऐसे महाशयों के संक्षिप्त परिचय देंगे, जो काशी में पैदा हुए अथवा बाहर से आए और यहीं अपनी साधना में सिद्धि प्राप्त कर यहीं रह गए। इनमें तीन प्रकार के महात्मा हुए—कोई सतोगुणी, कोई रजोगुणी, कोई तमोगुणी। यह विविधता इनके व्यक्तित्व और कृतित्व में झलकती है। इन लोगों का वृत्त कुछ तो लोगों से सुना है और कुछ को स्वयं देखकर तथा उनके सत्सङ्ग द्वारा प्राप्त किया है। ये सभी दिवङ्गत हो चुके हैं, केवल इनकी कहानी रह गई है।

हमें अत्यन्त हर्ष है कि उक्त महात्माओं की स्मृतियों को सर्व-साधारण को सुलभ करने का श्रेय 'कौल-कुल-भूषण' पं० श्री रमादत्त शुक्ल, एम० ए०, सम्पादक **'सम्पादक की वाणी'** को है क्योंकि उन्हीं के प्रेमानुरोध को स्वीकार कर मुझे इस सत्कार्य पर अपनी लेखनी चलाने का सुयोग मिला। शम्!

(१) श्री तैलङ्ग स्वामी जी (उदासी)

स्वामी जी महा-राष्ट्रीय ब्राह्मण थे। मराठी बोलते थे, कदाचित् संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाएँ नहीं जानते थे। 'तैलङ्ग स्वामी' नाम से काशी में प्रसिद्ध थे। रङ्ग-रूप बहुत काला, कद नाटा और शरीर दुबला था। स्वभाव सरल तथा मन कोमल था। सादी धोती पहनते, सफेद दुपट्टा ओढ़ते, माथे पर भस्म-त्रिपुण्ड् लगाते और रुद्राक्ष की बड़ी माला धारण करते रहे।

आप पण्ढरपुर (महा-राष्ट्र) के निवासी थे। आपके गुरु थे—बाबा श्री तुकाराम जी। उन्होंने ही आपको मन्त्र-दीक्षा देकर कहा कि 'बेटा! यदि सिद्धि प्राप्त करना चाहो, तो तुम सीधे काशी चले

जाओ। सात मोक्ष-पुरियों में से यह एक ही नहीं, विशेष भी है क्योंकि यहाँ ३३ कोटि देवता और सदा-शिव वास करते हैं।'

गुरु महाराज के सङ्केत से आप उन्हें प्रणाम कर उसी दिन काशी-पुरी की ओर पैदल चल पड़े। कई महीनों में आप तीर्थ-यात्रा करते हुए काशी पहुँचे। यहाँ ऐसी सुविधाएँ प्राप्त हुईं कि आप निश्चिन्त होकर एक स्थान पर ठहर कर अपनी साधना में तल्लीन हो गए।

स्वामी जी जिस स्थान पर रहे, वह माधवराम धरिहरा के पास है। वहाँ मन्दिर में कई देवता प्रतिष्ठित हैं। आपका भव्य चित्र भी वहाँ सुरक्षित है। यह स्थान महा-राष्ट्रीयों की देख-रेख में है।

आप केवल फलों को खाते और दूध पीते रहे। भक्तों को **'शिव-शिव'** जपने का उपदेश देते रहे। लोगों का विश्वास था कि स्वामी जी अन्तर्यामी हैं--सेवा से प्रसन्न होकर स्वयं गुप्त वर-दान देंगे।

१२५ वर्ष तक आप जीवित रहे। फिर अपने निवास-स्थान पर ही समाधिस्थ हो गए। वहाँ आपकी समाधि-पीठ के दर्शनार्थी लोग जाते हैं और पुष्प-माला तथा प्रसादी चढ़ाकर आरती करते हैं।

(२) पण्डित दुःख-भञ्जन जी तन्त्राचार्य

आप श्रीचण्डी देवी के महान् साधक थे। आपको अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त थीं। आपके ही आत्मज महा-महोपाध्याय पण्डित देवीप्रसाद जी शुक्ल, कवि-चक्रवर्ती एवं अद्वितीय व्याकरणाचार्य थे, जिन्हें 'विद्वत्-सभा' काशी के 'द्वितीय-पाणिनि' मानती थी।

कवि-चक्रवर्ती शुक्ल जी हौज कटोरा मुहल्ले के अपने निजी भवन में निवास कर कतिपय विद्यार्थियों को निःशुल्क पढ़ाते थे। उनके दो मित्र थे—पं० रघुवीर जी पाण्डेय वैद्य और सेठ भगवान-दास जी बागला। ये तीनों ही भाँग-बूटी के प्रेमी रहे। एक दिन दोनों मित्रों की इच्छा हुई कि 'तन्त्राचार्य जी' की सिद्धि देखी जाय। उन्होंने सुकुल जी से निवेदन किया। सुकुल जी ने कहा कि 'पिताश्री एक बजे तक आराधना कर चुकेंगे, तब तुम दोनों आना—उनके पास ले चलूँगा--कुछ बोलना मत, वे जो आज्ञा दें, उसे मानना।'

वैद्यजी तथा सेठ जी--दोनों ठीक समय पर आए और देवीप्रसाद जी के साथ जाकर सिद्ध जी को प्रणाम किया। तन्त्राचार्य दुःख-भञ्जन जी ने मुसकराते हुए आशीर्वाद देकर दो पास पड़े आसनों पर बैठने का सङ्केत किया। फिर बोले—'तुम लोग मेरी सिद्धि देखने आए हो? अच्छी बात है, मेरी जगदम्बा चण्डी अम्बा सब कुछ करने की सामर्थ्य रखती हैं। देखो, ११ बोतलें बन्द मद्य की मँगाओ।'

बागला जी ने अपने नौकर से तुरन्त मँगवा लीं। तान्त्रिकाचार्य जी ने पूछा--'सभी बोतलें भरी तो हैं? कोई खाली तो नहीं?'

इन लोगों ने कहा--'सभी तो भरी हैं, किसी का डाट भी खुला नहीं है।'

आपने कहा--'उनमें से कोई एक लाकर मेरे पास रखो।'

बागला जी ने एक बोतल स्वयं अपने हाथ में लेकर आपके पास रख दी। आपने उसे छुआ तक नहीं, केवल ध्यान करके बोतल पर **'जय चण्डिके!'** कहकर फूँक मार दी और कहा कि 'देखो, बोतलों में क्या है?'

सभी ने देखकर कहा कि 'महाराज ! अब तो किसी बोतल में कुछ भी नहीं है।' डाट खोलकर प्रत्येक बोतल उलट दी गई, किन्तु सभी रिक्त हो चुकी थीं। तब सिद्ध जी ने कहा—'अच्छा, सबमें डाट बन्द कर दो और कोई एक मेरे पास लाकर रख दो।'

वैसा ही किया गया। पुन. पहले की ही तरह **'जय चण्डिके !'** कहकर आपने फूँक दिया और बोले—'देखो, सभी बोतलें भर गईं या नहीं ?'

लोगों ने देखकर कहा—'ये तो सभी भर गई हैं !'

आपने पूछा—'क्या भरा है ? मुँह खोलकर देखो तो।'

सबके मुँह खोल दिए गए। सभी में गुलाब-जल भरा मिला, जिसकी सुगन्ध से सबके मन प्रसन्न हो उठे। सिद्ध जी बोले—'अच्छा, अब इन्हें गङ्गा जी में फिकवा दो।' फिर कहा कि 'जगदम्बा की आज्ञा है कि वैद्य जी आज से सभी रोगियों को बिना मूल्य की दवा दिया करें। सबेरे ८ से १० बजे तक, और तीसरे पहर ४ से ६ बजे तक ही दूकान खोलें। दो नौकरों द्वारा मन-चाही औषधियाँ अपनी देख-रेख में तैयार करवाएँ। अच्छे होनेवाले जो कुछ धन-धान्य या सामान स्वेच्छा से दे जायँ, उन्हीं पर अपना निर्वाह करें। किसी वस्तु की कमी न होगी। रहे सेठ जी, वे भी अपने धन से एक सुन्दर मन्दिर इसी फूल कटरे के पास बनवाकर उसमें सत्यदेव भगवान् के मूर्ति-विग्रह की स्थापना करें और पुजारी एवं पूजन-प्रसाद आदि की उचित व्यवस्था कर दें। इससे उनके कलकत्ते-बम्बई आदि के व्यापारों में दिन-दूनी, रात-चौगुनी उन्नति होगी।'

वैद्य जी और सेठ जी—दोनों ही गद्गद होकर बोले—'हमें हृदय से स्वीकार है। हम लोग प्रतिज्ञा करते हैं कि जगदम्बा की आज्ञा का यावज्जीवन पालन करेंगे।'

तन्त्राचार्य जी ने वैद्य जी के गले में एक रुद्राक्ष की माला और सेठजी के गले में एक तुलसी की माला पहनाकर दोनों की पीठ ठोंक दी। वे लोग चरण छूकर चले गए।

श्री दुःख-भञ्जन जी मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र-विद्या में काशी में अप्रतिम थे। अद्भुत चमत्कार लोगों ने उनके देखे। आपने अपने सुपुत्र से कहा था कि 'यह सिद्धि दी नहीं जाती, साधकों की सेवा-सुश्रूषा से ही सुलभ होती है। तुम गृहस्थ हो, इस साधना में नहीं चल सकोगे। इसी से मैं तुम्हें संस्कृत-साहित्य-सेवा की सिद्धि बहुत पहले ही दे चुका हूँ। तुम वेद-शास्त्र-पुराण-रामायण-महा-भारत एवं कवि-कुल-गुरु कालिदास, भारवि, दण्डी, माघ, भवभूति आदि के महा-काव्यों तथा कठिन नाटकों का कई प्रकार से सरल अर्थ कर सकोगे। तुम्हारा बुद्धि-बल विलक्षण रहेगा।'

सिद्ध जी दोनों नवरात्रियों में कलश स्थापित कर विधि-वत् अनुष्ठान करते थे। सभी दिन फलाहार करते। 'श्री दुर्गा सप्तशती' के १३ अध्यायों के मन्त्रों से आहुतियाँ देकर विसर्जन करते। आश्विन की शारदीय नवरात्रि में एक विलक्षण चमत्कार दिखाते। अष्टमी को एक बहुत बड़ा कूष्माण्ड (पेठेवाला कुम्हड़ा) बाजार से मँगाते। उसके बीच नाड़ा-सूत्र लपेट कर नौ टिक्की रोली की लगाकर कलश के आगे रखकर सात्विक बलि प्रदान करते। पाँच मिनट तक आँखें बन्द कर ध्यान-मग्न होते। फिर नेत्र खोलकर अपनी तर्जनी उँगली दिखाकर बोलते—**'जय चण्डिके !'** आपकी आवाज होते ही कूष्माण्ड के दो टुकड़े हो जाते। जान पड़ता, जैसे किसी खाँड़े (खड्ग) के द्वारा किसी ने काट दिया हो ! उस कटे हुए कुम्हड़े के १०८ टुकड़े कर देवी के उपासक भक्तों को प्रसाद-रूप में बाँट दिए जाते।

श्रद्धेय देवीप्रसाद जी मेरे ऊपर बड़ी कृपा रखते थे। मैं कभी-कभी उनके दर्शनों के लिए जाता रहा। वे मेरा सत्कार मिठाई, नमकीन, मगधी पान-बीड़े, इलायची, लौंग तथा खस, मुश्कम्बर, हिना आदि इत्रों से करते और घण्टे-दो घण्टे अपने पास बिठाकर पिङ्गल-छन्द-सूत्रम्, संस्कृत-साहित्य-दर्पण तथा प्रसिद्ध महा-काव्यों के चुने हुए पद्यों को बड़े प्रेम से सुनाते और कहते कि 'जो तुम श्रद्धा से सुन चुके हो, उसके प्रभाव से तुम हिन्दी-खड़ी बोली के महा-कवि ही नहीं, आचार्य बन जाओगे। तुम्हारे लिए मेरा यही शुभाशीर्वाद है।'

३. बाबा श्री कीनाराम जी औघड़

ये एक विलक्षण सिद्ध सन्त थे। ये श्मशान-भूमि पर ही विश्राम करते थे। सर्वाङ्ग में चिता-भस्म लगाते और मसान की लकड़ियाँ इकट्ठी कर धूनी जगाते। जो इनके पास कुछ भोजन-सामग्री लाते, उसमें से कुछ किसी चिता में डाल देते और शेष को खाया करते। रात में अकेले ही उन्मत्त होकर नाचते-कूदते थे। एक दिन की बात है कि ये हरिश्चन्द्र घाट पर योग जगा रहे थे। १२ बजे रात में एक काला कुरूप और लम्बी जटा-धारी एक सिद्ध सन्त खड़ाऊँ पर चढ़कर आया। उसने एक थप्पड़ मारकर पूछा—"क्यों रे ठग भगत ! तुझे कोई करामात मिली या नहीं ?"

कीनाराम जी डर गए। उन्होंने समझा कि यह कोई महा-श्मशान-नाथ ही प्रगट हो गया है। ये उनके पैरों पर गिर पड़े, फिर दोनों हाथ जोड़कर बोले—"बाबा ! मुझे दीक्षा देकर मेरा पथ-प्रदर्शन कीजिए।"

उस अद्भुत व्यक्ति ने कहा कि "तू मेरी सिद्धि देख !" फिर खड़ाऊँ पहने ही वह गङ्गा जी की सतह पर चलता हुआ, पार जाकर लौट आया। पुनः पूछा—"ये लकड़ियाँ कहाँ की आग से सुलगाता है ?"

कीनाराम ने कहा—"किसी चिता से लाकर इन्हें जलाता हूँ।"

उस व्यक्ति ने दूसरा थप्पड़ मारकर कहा—"इन पर खूब पानी छिड़क दे। मैं इन्हें जला देता हूँ।"

कीनाराम ने वैसा ही किया। तब उस अज्ञात पुरुष ने मुँह से फूँकना शुरू किया। मुँह की निकलती ज्वाला ने गीली लकड़ियों को रुई की गाँठ-जैसा जलाकर भस्म कर दिया। इन महा-पुरुष का नाम था—कालूराम जी। इन्होंने अपनी दोनों खड़ाऊँ कीनाराम को देकर कहा—"अब तू इन्हीं की नित्य नियम से पूजा किया करना। तुझे अनूठी सिद्धि प्राप्त होगी। अब तू मेरा सच्चा चेला बन गया। कहीं भी आश्रम बनाकर बैठ जाना।" यह कहकर बोले—"तू आँखें बन्द कर ले। मैं खुद तेरे पिण्ड में समा जाऊँगा।"

बस, बाबा कीनाराम ने ज्यों ही दोनों नेत्र बन्द किए, त्यों ही उनके शरीर में एक तेज प्रकाश घुस गया। उन्होंने घबराकर अपनी आँखें खोलीं कि उन्हीं के भीतर उनके गुरुदेव की आत्मा लुप्त हो गई ! उन्हें यह सब स्वप्न-सा ज्ञात हुआ, किन्तु प्रसन्न होकर दोनों खड़ाऊँ अपने शिर पर रख वे बेल-बरिया की ऊबड़-खाबड़ भूमि पर आकर कुछ घास-फूस इकट्ठी कर बैठ गए। इस स्थान के आस-पास बहुत से ताड़ के वृक्ष थे, जिनमें छेव मारकर मिट्टी की लभनी बाँध दी जाती थी, जिसमें 'ताड़ी' नाम की मीठी, रसीली और नशीली वस्तु चूकर भर जाती। बहुत से ताड़ी पीनेवाले सबेरे आकर ठीकेदार को दाम देकर उसे पिया करते। वे आग तापने के लिए बाबा कीनाराम की जलाई धूनी के पास आकर

बैठने लगे। साथ ही अपनी खरीदी ताड़ी में से कुछ बाबाजी को भी पिलाने लगे तथा लाई हुई अपनी चाट भी खिलाते। ये सभी ताड़ी-प्रेमी बाबा जी के चेले बन गए।

चेलों ने ताड़ के पत्तों की एक मड़ई तैयार कर दी। बाबा जी उसी में रहने लगे। ताड़ी का ठेकेदार भी चेला बन गया। उसने चन्दा तहसील करके एक कई बीघे का घेरा घिरवाकर उसके बीच में एक पोखरा खुदवा डाला। अब वहाँ बहुत से लोग दर्शन करने आने लगे। यही स्थान—'बाबा कीनाराम का स्थल' या 'अखाड़ा' के नाम से सरनाम हुआ और यही पोखरा **'क्रीं-कुण्ड'** कहलाने लगा, जिसमें सुखण्डी रोग से पीड़ित बच्चे नहलाए जाते और वे भले-चङ्गे होकर जाया करते। फलतः बाबाजी के धाम में प्रति रविवार को भावुक स्त्री-पुरुषों का खासा मेला लगने लगा। ३-४ चेले सबको बैठाने-उठाने का प्रबन्ध करने लगे।

बाबा के आगे लकड़ियों की अखण्ड धूनी जला करती। उसी में से वे थोड़ी राख की 'प्रसादी' दिया करते। जिस पर प्रसन्न होकर वे अपनी 'कुबड़ी' छुआ देते, उसका मनोरथ सफल हो जाता। बाबा के यहाँ नित्य भोजन-भण्डारा चलने लगा। औघड़ मत के कितने ही साधु वहाँ रहकर 'अलख' जगाने लगे। नाना प्रकार के सुन्दर सुगन्धित फूल लग गए। नींबू, अमरूद, सन्तरे, शरीफे और केले के पेड़ भी खूब फलते और भक्तों में बाँटे जाते। कोयल, सुग्गे, मोर भी स्वतन्त्रतापूर्वक वहाँ विचरते। स्थान बड़ा ही रमणीय एवं दर्शनीय बन गया।

जो भी औघड़ मरते, उन्हें गाड़कर 'समाधि' बना दी जाती। लोग आश्रम के उद्यान में घूमकर समाधियों पर माला-फूल चढ़ाते, प्रसाद लगाते और धूप-दीप से आरती करते। बाबाजी के जीवन-काल में ही वहाँ गुणी गायक पहुँचकर गान-वाद्य करने लगे, तवायफें (नर्तकियाँ) भी साज-बाज के साथ वर्ष में एक दिन नाच करने लगीं।

एक बार बाबा ने कहा कि "मैं अपनी ओर से खीर-पूड़ी का भण्डारा करना चाहता हूँ। क्या और कितना सामान लगेगा?" एक हलवाई चेले ने कहा—"बाबा जी! खीर के लिए दो कनस्टर दूध और तीन कनस्टर घी लगेगा।"

बाबा ने कहा—"दो भट्ठे बनाकर उन पर दो कड़ाहे चढ़ा दो और एक में **'क्रीं-कुण्ड'** के दो कनस्टर जल भर दो और दूसरे में तीन कनस्टर जल डाल दो। जब दोनों में पानी खौलने लगे, तो एक में चावल धोकर और दूसरे में आटा सानकर छोटी-छोटी लोइयाँ गढ़ कर डाल दो। कलछुल-पौने से आध घण्टे तक चलाकर उतार लो। खीर-पूड़ी ठण्डी होते ही सबको खिलाओ।"

बाबा के कथनानुसार सब कार्य करने पर, एक पत्तल पर खीर-पूड़ी परोस कर उनकी धूनी से सटाकर रख दी गई। बाबा के नेत्र बन्द करते ही अग्नि-ज्वाला में सब कुछ जलने लगा। धुएँ से इलायची-केसर की बड़ी ही मजे की सुगन्धि चारों ओर व्याप्त हो गई। आधी रात तक भोजन-भण्डारा चलता रहा। केले के पत्तों पर परोसा गया सामान भर-पेट खाकर सभी डकरने लगे। कुछ लोग खीर-पूड़ी की 'प्रसादी' लेकर घर गए।

दूसरे दिन जब लोग आकर खीर-पूड़ी की प्रशंसा करने लगे, तब बाबा बोले—"भक्तों! 'क्रीं-कुण्ड' ही धन्यवाद का पात्र है। अब उससे लिया हुआ दूध-घी उसे लौटाना है, जिससे फिर कभी जरूरत लगने पर उससे कुछ माँगने का मुँह रहे।"

यह सुनते ही कई भक्त तुरन्त बाजार जाकर दो कनस्टर दूध और तीन कनस्टर घी ले आए और बोले—"महात्मा जी ! कैसे, क्या हो ?"

बाबा ने कहा—"इनको एक-एक कर 'कुण्ड' में उड़ेल दो। फिर प्रणाम कर कहना कि आप अपना उधार स्वीकार कर लें। बस।"

बाबा कीनाराम जी की एक सिद्धि-कथा और अब तक फैली हुई है, जो राजा चेतसिंह के समय में प्रचलित हुई। उसकी कहानी पत्र-पत्रिकाओं में छपी।

ऐसी किंवदन्ती है कि राजा श्री बरिबण्ड सिंह, काशी ने लड़ाई में जीतकर एक क्षत्राणी युवती से शादी कर ली, जिसका नाम श्री पन्ना कुँवरि था और अपनी इस दूसरी ब्याही हुई अपनी रानी को रामनगर में न रखकर बनारस में शिवालय के ऐतिहासिक किले में स्थान दिया। उनके बाद उनके औरस सुत्र राजा श्री चेतसिंह गद्दी-नशीन काशी-नरेश हुए।

एक अवसर की बात है कि राज-माता श्री पन्ना कुँवरि ने कहा—"बेटा ! मैं तुम्हारी मङ्गल-कामना से एक दिन काशी के साधु-सन्तों, ब्राह्मण-विद्वानों का भारी भण्डारा करना चाहती हूँ। तुम ३-४ दिनों में इसका समुचित प्रबन्ध कर दो।"

राजा ने कहा—"मां ! जैसी आज्ञा। ऐसी ही व्यवस्था हो जायगी।"

उन्होंने अपने पिताश्री के वयोवृद्ध मन्त्री श्री औसान सिंह को सचेत कर दिया। उन्होंने जब पक्वान्नों से भोजन-भण्डार भरवा दिया, तब सभी स्थानों पर निमन्त्रण भिजवा दिया। पचासों नौकर-चाकर सेवा-कार्य में खड़े हो गए।

ठीक दिन को ही संयोग से कीनाराम जी भी पूर्व के राज-द्वार पर आए। उनके हाथ में एक काले कुत्ते की नली थी। पहुँचते ही द्वारपाल से कहा कि 'राज-चेरा से मिलने आया हूँ। उसे बुला लाओ।"

यह सुनकर द्वारपाल बोला—"बाबा जी ! आज वे नहीं मिल सकते क्योंकि उनके यहाँ साधु-ब्राह्मणों का भण्डारा है। आप, हो सके, तो कल आइएगा।"

यह सुनते ही बाबा ने गुस्से में कुत्ते की नली को द्वार पर पटक दिया, जिससे एक भयङ्कर कुत्ता प्रकट हुआ और 'भों-भों' करता भाग गया। सभी लोग डर गए। बाबा अपने आश्रम में चले गए। 'कीनाराम-स्थल' शिवालय-किले के पश्चिम कुछ ही दूरी पर है।

इधर क्या चमत्कार हुआ कि भण्डारे में मिठाई-पूड़ी की जगह मांस के लोथड़ों से भर गई ! बड़ी दुर्गन्ध से सारा किला भर गया !! राजा बहुत घबराए कि यह करिश्मा क्यों और कैसे हुआ ? तब द्वारपाल ने हाथ जोड़कर बाबा कीनाराम के आने का माजरा सुनाया और कहा—"हुजूर ! उन्हीं के यहाँ जाकर माफी माँगने से ही काम बनेगा।"

राजा ने कहा—"यह तुम्हारा ही कसूर है, इसलिए तुम्हीं जाकर, उनके पैरों पर शिर रखकर क्षमा कराओ।"

वह नौकर दौड़कर, स्थल में आकर, मुँह में दूब लेकर पैरों पर गिर पड़ा—"बाबा ! मुझे क्षमा करें। मैं अज्ञानी हूँ, आप सन्त हैं। अतः दया करें ! दया करें !!"

बाबा हँसकर बोले—"ठीक है। मेरी धूनी की भभूत ले जाकर भण्डारे में छिड़का दे। सब-कुछ

ज्यों-का-त्यों हो जायगा, लेकिन तू अपने हाथों से एक पत्तल पर सभी खाने की चीजें परोस कर किले के फाटक पर रख देना और जरा अपनी आँखें मूँदना। मेरा वही काला कुत्ता 'भों-भों' करता हुआ आएगा और खाकर गायब हो जाएगा। तब सभी लोगों को जिमाया जाय। मैंने तुझे इसलिए क्षमा-दान किया कि तुझे राजा कोई कड़ा दण्ड न दे, किन्तु मैं उस राजा को अवश्य शाप देता हूँ, जो मुझे घृणित समझकर मुझसे मिलने नहीं आया। मैं तो उसके द्वार पर मिलने को गया था। इसलिए उसका राज्य छिन जायगा और यह किला म्लेच्छ तुर्कों के कब्जे में चला जायगा। यह चेतावनी जरूर दे देना।"

उस आदमी ने सब कार्य बाबा के कथनानुसार सम्पन्न होने पर राजा को बाबा के शाप के बारे में बताया, जिसे सुनकर राजा चुप रहे, फिर नौका द्वारा रामनगर की ओर रवाना हो गए। राज-माता श्री पन्ना जी यह सब सुनकर भयभीत हो गईं। वे रात में ३-४ नौकरानियों के साथ छिपकर रोती हुई हाथ जोड़कर बाबा के पास आईं और बोलीं कि--'हे सन्तनारायण! मेरे बेटे का अपराध क्षमा कर दें, नहीं तो मैं मर जाऊँगी।"

बाबा ने मुसकुरा कर कहा—"मैं उसका गुनाह तो माफ कर दूँगा, पर बद्दुआ का असर तो होकर ही रहेगा। तुम्हारी व तुम्हारे बेटे की जान बच जाएगी। धूनी की पाँच परिक्रमा करके किले में वापस चली जाओ। कुछ पीढ़ियों बाद कोई प्रतापी काशी-नरेश होगा, जो किले पर पुनः अधिकार प्राप्त करेगा।"

कालान्तर में बाबा की सभी बातें सत्य प्रमाणित हुईं।

४ श्री सिद्धनाथ जी (मौनी बाबा)

काशी में 'हिन्दू-विश्व-विद्यालय' के समीप 'श्रीसङ्कट-मोचन' हनुमान मन्दिर और उसके पश्चिम कुछ ही दूरी पर, 'श्रीसङ्कट-हरण' हनुमान मन्दिर के बीच की भूमि बड़ी खड़-बीहड़, काँटों-कुशों से भरी और राह-रहित थी। बड़ी कठिनाई से भक्त-प्रेमी 'सङ्कट-मोचन' से 'सङ्कट-हरण' तक दर्शन-पूजन के लिए जा-आ पाते थे।

इसी भूमि-खण्ड में एक पर्ण-कुटी में श्री सिद्धनाथ जी (मौनी बाबा) वास करते थे। यहाँ उनको खाने के लिए बेर के फल और पीने को एक सोते का जल मिलता था। आस-पास किसी को यह नहीं मालूम था कि वे कहाँ के रहनेवाले थे, किस जाति के थे और कौन-सी भाषा बोलते थे, क्योंकि वे कभी मुँह से नहीं बोलते थे, सङ्केत से ही वार्त्तालाप करते थे।

ये मौनी बाबा बहुत बड़े तान्त्रिक थे। तन्त्र-विद्या के षट्-कर्मों को भी जानते थे। इनके पास हर समय धूनी जलती रहती थी। जो भक्त इनको प्रसन्न करते, बाबा उसको अपनी लकड़ी देते। उस लकड़ी को लेकर, जो जिस मनोरथ से किसी को छुआता, उसका मनोरथ सिद्ध हो जाता। कुछ भक्त लोग बाबा की इस लकड़ी का दुरुपयोग करने लगे, जिससे एक दिन बाबा ने अपनी लकड़ी भक्तों से वापस माँग ली और उसे जलती हुई धूनी में डाल दिया। धूनी से एक जलता हुआ लट्ठा लेकर सभी एकत्रित भक्तों को दौड़ाया। वे सभी भयभीत होकर भाग गए। बाबा भी उदास होकर बैठ गए। फिर उसी रात में न जाने कब अपनी झोपड़ी में आग लगाकर वे वहाँ से कहीं अन्यत्र चले गए।

दूसरे दिन कुछ लोग पता लगाने गए, तो देखा कि झोपड़ी जल कर राख हो गई है और मौनी बाबा का कुछ पता नहीं है।

५ श्री स्वामी वीतरागानन्द जी 'अवधूत'

स्वामी श्री वीतरागानन्द जी कनौजिया ब्राह्मण थे। पढ़े-लिखे नहीं थे। १३० वर्ष की आयु तक आप जीते रहे। आप काशी कब आए, इसके सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। आप हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी की सीमा के बाहर, दक्षिण दिशा में 'बनपुरवा' गाँव के पास एक लम्बे-चौड़े स्थान पर कुटी बनवा कर रहते थे। इसीलिए स्थानीय लोग आपको "बनपुरवा के बाबा" के नाम से जानते थे।

आपकी कुटिया के चारों ओर दुधार–ठाँठ और बाँझ गायें रहती थीं। लाल, पीली, काली, धौरी, सिंधुरिया और चित-कबरी धेनु के अपूर्व दर्शन आपके स्थान पर होते थे। बाबा के भक्त गायों के लिए भूसे-घास का प्रबन्ध करते थे और इनकी सेवा करते थे। स्वयं बाबा घूम-घूम कर गायों का निरीक्षण करते थे।

जो गायें दूध देती थीं, उन्हें कराई, खरी, उड़द की दाल की कढ़ी दी जाती थी। दूध औंटा कर रबड़ी तैयार की जाती थी, जिसमें केसर और इलायची की बुकनी भी डाली जाती थी। इस रबड़ी का भोग लगाकर भक्तों को प्रसाद-स्वरूप बाँटा जाता था। आधा सेर रबड़ी बाबा जी को भी खिलाने के लिए रक्खी जाती।

बाबा जी अपने हाथ से कुछ भी नहीं खाते थे। अन्न नहीं, केवल फल ही आप ग्रहण करते थे। केला आपको बहुत पसन्द था। इच्छानुकूल खा लेने पर खिलाने वाले का हाथ स्वयं रोक देते। बारहों महीने यही नियम चलता था।

बाबा जी का शरीर गोरा था। पतले-दुबले नर-कङ्काल से जान पड़ते थे। बहुत लम्बे और आजानु-बाहु थे। भक्त-जन चतुर्दिक् समवेत होकर—'श्रीराम ! जय-राम !! जय जय राम' का उच्चारण करते रहते थे। बाबा सुनते रहते थे। सोते वक्त चुटकी बजाते, तब लोग चुप हो जाते।

आपकी एक आदत यह थी कि सोने से पहले चमेली के तेल की मालिश देह में कराते थे। ऐसा जान पड़ता कि तेल से स्नान कर लेटे हैं। आपके चरण छूने से ही हाथों में तेल लग जाता था।

रात १२ बजे तक आपके यहाँ से सभी प्रेमी चले जाते, तब आप किसी समय खड़ाऊँ पहनकर शौचादि से निवृत्त होकर सोया करते। प्रातः ५ बजे उठ जाते। किसी देवता की पूजा नहीं करते थे। वास्तव में आप अपने को "आत्माराम" जानते-मानते रहे।

आप न तो कोई भाषा जानते थे, न ही बोलते थे। जब कोई स्त्री-पुरुष धन-धान्य या सन्तान पाने की प्रार्थना करता, तब प्रार्थना करनेवाले के चुप होने पर बोलते—'**मङ्गलम् भगवान् विष्णुः।**' लोगों का विश्वास था कि बाबा के दो बार ऐसा कहने से काम बन जाता है।

लेखक ने बाबा के २-३ बार दर्शन किए। एक बार लेखक द्वारा बाबा को "शिवाष्टक" सुनाने पर भी बाबा ने यह कहकर आशीर्वाद दिया कि –"ब्रह्म देव ! मङ्गलं भगवान् विष्णुः जय हो !"

मेरे विचार से बनपुरवा के बाबा काशी-पुरी के एक सिद्ध सन्त थे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

६ अवधूत बाबा श्री हरिहर जी

काशी में हरिहर बाबा के समान विलक्षण सन्त के दर्शन आज दुर्लभ हैं। अस्सी-भदैनी जाने पर मैं उनके यहाँ अवश्य जाता था। उनके पास थोड़ी देर बैठ कर उन्हें कोई-न-कोई कथा-पुराण सुनाया करता था।

हरिहर बाबा के सम्बन्ध में ख्याति है कि वे ब्राह्मण थे। उनका घर चुनार (मीरजापुर) के किसी गाँव में था। वे माता-पिता-विहीन थे। उनका कोई अभिभावक भी नहीं था। वे पढ़े-लिखे भी नहीं थे। देखने में काले—कुरूप थे, कम बोलते थे। गाँव में लोग इन्हें अपने पास बैठाने में घृणा करते थे, अतः वे व्यथित-हृदय होकर काशी चले आए। गङ्गा-पार होकर 'बनमुखा' पहुँचे।

'बनमुखा' में स्वामी श्री वीतरागानन्द जी अवधूत के चरणों को छूकर बोले—"बाबा! हमहूँ के आप अवधूत बनाय लेव। अब हम अकेला रहीं।"

अवधूत जी बोले—"अच्छा, बताव—तोर नाँव का हौ? हमके तो लोग हरिहर कहै लें। तैं अवधूत कै किरिया-करम सझरैबे?"

हरिहर बाबा बोले—"हाँ बाबा। आप जौन फरमाय देब, हम तनिकौ ओमें कसर न करबै!"

अवधूत जी बोले—"अच्छा, ठीक! पहिले तैं अापन जनेऊ अउर करधन तोड़ के फेंक दे, फिर धोती-धोरी छोड़ के नंगा होजी। इहै धूनी कै राखी पानी में घोर के भर देही पोत ले अउर जहाँ रहे, मन में राम-राम, चाहे शिव-शिव जपल करे—केहू से कुछ माँगे मत। कोई कुछ दे दे, तौ ओतनै खाय के सन्तोष करे! झूठ कबौं मत बोलो! अच्छा जा, भाग!"

बाबा ने जो कुछ कहा—हरिहर करते गए। फिर अपने सभी कपड़ों की एक गठरी बाँधकर शिर पर रख कर बोले—"बाबा! अब हम जात हई, पाँव छूवत हई! आशीर्वाद चाहत हई।"

अवधूत जी बोले—"हरिहरवा! ई कपारे पर गठरी कैसन रखले हौवे?"

हरिहर बाबा बोले—"ए गठरी में जरूरी कपड़ा रखले हई। जहाँ काम लगी, उहाँ बिछाइबै, ओढ़बै।"

अवधूत जी बोले—"क-रे ससुरा! जब सब कुछ फेंक के नङ्गा हो गइले, तबौ जरूरत लगलै रही?"

इतना कहकर अवधूत जी ने अपनी लाठी से पीठ पर मार कर कहा—"भाग ससुरा! अब फिर इहाँ मत आये।"

लाठी की चोट खाकर हरिहर भागे! जगवा घाट पर पहुँच कर गठरी को गङ्गा में फेंक दिया। ऊपर ऊँचे पर बोई हुई अरहर-खेत में एक हफ्ते तक अन्न-रहित पड़े रहे। सातवें दिन एक बन्दर एक भूँजा हुआ भुट्टा इनके ऊपर फेंक कर भागा। भुट्टे के दाने छुड़ाकर आप खा गए और गङ्गा जी पहुँच कर ५-६ अँजुली भर कर जल पी लिया। फिर वे उसी खेत की अरहर में छिप गए। खेत का मालिक खेतिहर वहाँ आया, इनसे कई सवाल किए, किन्तु इन्होंने किसी का कोई जवाब नहीं दिया।

तब उसने समझ लिया कि यह आदमी बहरा और गूँगा मालूम होता है। उसने अपनी ४-५ रोटियाँ इनके हाथों में रख दीं। वे सब रोटियाँ ये खा गए। तब उसने इनके हाथों पर पानी छोड़ा, जिसे अँजुली भर-भर कर पी गए। वह अपना डब्बू-लोटा खाली कर घर चला गया। उसने सोचा कि इस नङ्गे-धड़ङ्गे को देखकर चोर अरहर न काटकर डर कर भाग जाएँगे।

हरिहर जहाँ छिपे हुए थे, वहाँ से दो-तीन बीघे दूर काले कबूतरों की छतरी (ठहरने की जगह) थी। वहाँ सबेरे कुछ दानी भक्त आकर कच्चे भूँजे चने (छोले) छींट जाते, जिन्हें कबूतर चुगते। बाबा भी वहाँ पहुँच कर एक-एक दाने को उठाकर खाते। फिर नीचे उतर कर गङ्गा जी का जल

पीकर अपनी जगह पर चले जाते। प्रायः ५ वर्ष तक इसी प्रकार वहाँ मौन होकर भगवान् का भजन करते रहे।

एक बार बाबा गङ्गा में बड़ी बाढ़ आने से, तेज धार के साथ बहकर राज-घाट के पास जा लगे। घोर तपस्या से उनका शरीर सूखकर रूक्ष-मुक्ष बन गया था। आँखें भी धुँधली पड़ गईं थीं। अतः उन्होंने मौन भङ्ग कर दिया। लोगों ने पूछा कि "सन्त जी ! आपको कहाँ पहुँचाया जाय ?"

तब इन्होंने बताया कि "मुझे 'नगवा' पर पहुँचा दें। वहीं एकान्त-वास में आनन्द मिलेगा।"

इस प्रकार लोगों ने इन्हें 'नगवा' पहुँचा दिया।

५-६ वर्षों में आप सिद्ध सन्त माने जाने लगे। लोग दर्शन के लिए आने लगे। आपको विविध प्रकार का भोजन और फल खिलाने लगे। आप एक ही बार खाते-पीते। जो कुछ आता, उसमें कुछ भी बचाकर न रखते। सभी को प्रसाद-रूप में बाँट देने और उच्छिष्ट को गौवों को खिला देने का आपने नियम बना दिया था।

प्रायः २० वर्ष बीत गए। बाबा की जटा सिवार की तरह उलझ कर पैर तक लटकती थी। वे पद्मासन लगाकर ही बैठा करते थे। बैठे-ही-बैठे चुप होकर सो लेते थे। शरीर पर के बाल कुश-काँटे-जैसे नुकीले बन गए थे। कभी तैल का स्पर्श भी नहीं होने देते थे। उनकी साधना की सिद्धि की बात सुनकर किसी रियासत की रानी या राजा आए। उनका कुछ कठिन कार्य घर आते ही पूरा हो गया। वे पुनः बाबा के पास दौड़े आए और अस्सी के पास गङ्गा जी में एक स्थायी बजड़े पर बाबा के विराजने और सब प्रकार का रियासती प्रबन्ध करने का नम्र निवेदन अत्यन्त आग्रह के साथ किया, जिसे बाबा ने कठिनाई से स्वीकार किया।

अतः अब बाबा बजड़े पर लाए गए। उनके लिए सभी प्रकार के प्रबन्ध कर दिए गए। अर्थात् बाबा को किसी बात के लिए सोचने की आवश्यकता न थी। लोग घड़ी-घण्टा बजाकर पूजा-आरती करते, प्रसाद लगाकर सबको बाँटते और भजन-भाव करते। मैंने अपनी आँखों से जाकर देखा कि बाबा जी बजड़े पर जाड़े में शीत सहते, गर्मी में भयङ्कर ताप सहते और बरसात में मेघों की तड़प, बिजली की कड़क सहते। लगातार वर्षा के प्रहार से भी विचलित नहीं होते थे।

अवधूत जी की एक साधना और भी चल पड़ी थी कि अब कभी काशी में मल-मूत्र त्याग न करते। इसकी उन्हें जरूरत ही नहीं होती थी। बारहों मास ४-५ बजे दिन में मल्लाह (मांझी) उनका बजड़ा उस पार पहुँचाते, जहाँ निपट कर वे पुनः बजड़े पर आ जाते और काशी के अस्सी घाट पर गङ्गा में लङ्गर बाँधकर उसे ठहराया जाता और सन्ध्या का कार्य-क्रम पूरा किया जाता।

बाबा के एक भक्त थे—पं० शिवविनायक मिश्र जी वैद्य-शास्त्री, जो बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त की ओर से निःशुल्क दातव्य औषधालय चलाते थे। उन्होंने अपने प्रयत्न से 'हरिहराश्रम' स्थापित करा दिया, जहाँ पर्वों और विशेष अवसरों पर उत्सव मनाया जाता था। साधु-ब्राह्मणों एवं दीन अनाथों को भोजनादि दिया जाता था।

जब बाबा जी ब्रह्म-लीन हो गए, तब उनके प्रिय शिष्य श्री विश्वनाथ जी अवधूत उसी बजड़े पर रहने लगे। ये भी परमार्थ-परायण सन्त थे। इन्होंने भी अपने गुरु की गद्दी की यथा-शक्ति प्रतिष्ठा बनाए रखी, किन्तु ये कुछ ही वर्षों बाद कैलास-वासी हो गए। फिर तो उस बजड़े की परिपाटी सब प्रकार से समाप्त हो गई। हाँ, 'हरिहराश्रम' का कारबार बहुत समय तक अग्र-गण्य रहा।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि श्री हरिहर बाबा जी के जीवन-वृत्त पर मैंने एक बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा था, जिसे लिखे भी पचासों वर्ष हो गए। वह छपा नहीं, केवल उसकी पाण्डुलिपि एवं तत्सम्बन्धी पत्रों की कतरनें मेरे पुस्तकालय में सुरक्षित हैं।

७ महा-महोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ जी कविराज

स्व-नाम-धन्य कवि-राज पण्डित गोपीनाथ जी को लोग 'तान्त्रिक-शिरोमणि' मानते थे। आप बङ्गाली ब्राह्मण थे। आपके परिवारवाले भी धार्मिक और भगवती के उपासक थे। आप संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित, बँगला व अंग्रेजी भाषा के ज्ञाता थे। आप काशी में विख्यात क्वींस-कालेज, जगतगंज के प्रधानाचार्य रहे।

कालेज से अवकाश ग्रहण करने के बाद आप अपनी साधना-सिद्धि में लगे। आपने स्वामी विशुद्धानन्द जी से मन्त्र-दीक्षा ग्रहण की थी, जो श्रीरामकृष्ण परमहंस के पट्ट-शिष्य थे।

कवि-राज जी कई शास्त्रों के ज्ञाता थे। आप सौर्य-चिकित्सा से रोगियों को रोगादि से मुक्त करते थे। आप श्री आनन्द-मयी माँ के गुरु भी थे, जिनका आश्रम भदैनी पर बना है। आपने कई अभूत-पूर्व तन्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे हैं।

८ परम विदुषी श्रीआनन्द-मयी माँ

आनन्द-मयी माँ एक प्रभाव-शालिनी योगिनी थीं। बङ्गाल की होने पर भी, आप खड़ी हिन्दी में बोलती थीं और व्याख्यान देती थीं। आप देखने में सुन्दरी और परम विदुषी थीं। आपकी वाणी वीणा-ध्वनि-जैसी बड़ी मीठी थी।

आज काशी में आपके नाम से आश्रम, सुन्दर घाट एवं चिकित्सालय तथा पठन-पाठन के लिए विद्यालय की स्थापना हो चुकी है। आश्रम के समीप एक सुव्यवस्थित अतिथि-गृह भी बन गया है। यह सब आपकी परमार्थ-बुद्धि की सद्भावना का ही प्रभाव है।

आनन्द-मयी माँ की आकांक्षा भारतीय महिलाओं की शिक्षा-दीक्षा, जागृति तथा उन्नति की ओर अधिक थी। उनका कहना था कि यदि महिलाएँ सुधर गईं, तो समाज को सुधरने में तनिक भी देर न लगेगी।

एक उत्सव में लेखक को भी यह देखने का अवसर मिला कि आसनों पर बैठकर माला-फूल चढ़ाकर, धूप-बत्ती सुलगा कर १८ महिलाएँ 'गीता-पाठ' कर रही थीं। सबसे आगे स्वयं माँ भी पाठ में संलग्न थीं।

आनन्द-मयी माँ बड़ी दया-मयी लोक-हितैषिणी थीं। उनकी योग-सिद्धि की बातों को सुनकर दार्जिलिङ्ग, पूर्णियाँ, शिलाङ्ग, जलपाईगुड़ी, डिब्रूगढ़, दीनाजपुर, आसनसोल, हुगली, बर्द्धवान, धनबाद आदि से प्रतिष्ठित परिवारों की स्त्रियाँ आश्रम में आतीं और महीने-दो-महीने में गति-विधि देखकर, मन्त्र-दीक्षा लेकर अपने यहाँ माँ से आज्ञा लेकर आनन्द के साथ वापस जातीं।

९ श्रीमुण्डेश्वर जी महाराज

काशी में श्रीमुण्डेश्वर जी महाराज का स्थान सिद्ध 'योग-समाधि-पीठ' है। यह स्थान लहुरावीर चौमुहाने से आगे, स्टेशन रोड पर, मलदहिया-स्थित झाड़-झंखाड़ में गुप्त स्थान पर स्थित है। इस सिद्ध-पीठ में नौ जीवित लोग, गड्ढे खोदकर उनमें समाधिस्थ हो चुके हैं। इसीलिए इस स्थान का नाम 'नव-मुण्डी' या 'नव-कुण्डी' पड़ गया है।

कहते हैं, बाबा श्रीमुण्डेश्वर जी महाराज यहाँ नित्य प्रगट होते हैं और नवों समाधि-स्थलों में जाकर समाधिस्थ पुरुषों से वार्त्तालाप करते हैं। किसी को उनका दर्शन नहीं मिलता। केवल जो लोग कुछ दूर से ध्यान देकर सुनते हैं, उन्हें आदमी की आवाजें सुनाई पड़ती हैं। संक्षेप में यह 'मुण्डेश्वर' अथवा 'कुण्डेश्वर' स्थान बड़ा विलक्षण है।

१० प्रो० रामदास जी गौड़, 'प्रेत-विद्या-विशारद'

प्रो० रामदास जी उच्च-कोटि के वैज्ञानिक थे। 'विज्ञान' नामक मासिक पत्र के आप सम्पादक थे। काशी में बड़ी पियरी मुहल्ले में आपका निजी मकान था। आपके घर पर श्री सम्पूर्णानन्द जी, श्री श्रीप्रकाश जी, पं० श्रीगोपाल शास्त्री 'दर्शन-केसरी', पं० कमलापति त्रिपाठी जी आदि प्रतिष्ठित व्यक्ति प्राय: आया करते थे।

आपकी प्रतिभा विचित्र थी। आप कठिन-से-कठिन कार्य को सरल-से-सरल बना कर दिखा देते थे। एक बार आपने डा० पुन्ताम्बेकर की अंग्रेजी पुस्तक 'हैण्ड-ओवेन एण्ड हैण्ड-स्पन' का हिन्दी में 'हाथ की कताई-बुनाई' नाम से अनुवाद किया। यह पुस्तक अजमेर-निवासी श्री जीतमल जी लूणियाँ, हिन्दी-साहित्य-मन्दिर, काशी से छपाने जा रहे थे। पुस्तक कहीं खो गई। अत: श्री जीतमल जी ने मुझसे कहा कि मैं गौड़ जी से पुन: अनुवाद करने की बात कहूँ। मैंने कहा—"ठीक है, मैं अभी उनके पास जाता हूँ। लाइए, वह अंग्रेजी पुस्तक दीजिए।"

अंग्रेजी पुस्तक लेकर मैं गौड़ जी के घर गया। उस समय पूजा-पाठ समाप्त करके आप भोजन करने जा रहे थे। मेरे पुकारने पर दरवाजा खोलकर प्रणाम किया और बोले—"कवि पुष्कर जी ! आज आपने मेरी कुटिया पर कैसे पधारने की कृपा की ?"

अन्दर ले जाने के बाद एक कम्बल का छोटा-सा आसन बिछा दिया। बैठ जाने पर मैंने अपने मित्र लूणियाँ का सन्देश सुनाया। सुनकर आप जोर से हँसे और बोले—"मैं पाँच मिनट में अन्दर से आता हूँ।"

आप भीतर गए और एक पात्र में गङ्गा-जल तथा एक थाली में शुद्ध घी में बना हलुवा ले आए और बोले—"प्रसाद पाइए ! मैं भोजन करके दस मिनट में सेवा में हाजिर होता हूँ।"

आप फिर भीतर चले गए। पुन: लौटे तो कुछ लौंग-इलायची-सुपारी और सौंफ एक कटोरी में ले आए। उन्हें मुझे खिलाकर स्वयं खाया और मेरे सामने एक कुशासन पर विराजमान हो गए। अंग्रेजी की पुस्तक मुझसे लेकर उसे उलट-पुलट कर आप बोले—"इस काम को करने के लिए तीन दिनों तक आपको इसी समय पधारने का कष्ट उठाना पड़ेगा।"

मैंने कहा—"एवमस्तु। आऊँगा।"

दो हाथ की लम्बी-चौड़ी एक चौकी आगे धर दी गई, जिस पर कुछ रूलदार कागज, एक काली और एक लाल—दो पेंसिलें तथा एक चाकू रखा हुआ था। गौड़ जी एक सादी धोती पहने और रामनामी ओढ़े थे। माथे पर मलयागिरि चन्दन लगाए थे। सामने दीवार पर लटकते हुए वीणा-वादिनी भगवती सरस्वती के चित्र को प्रणाम कर बड़ी सरल और सुबोध भाषा में अनुवाद लिखाने लगे।

अनुवाद का कार्य प्राय: दो घण्टे तक अविराम चलता रहा। न गौड़ जी की जीभ रुक सकी और न मेरी लेखनी साँस ले पाई।

अनुवाद-कार्य तीन दिनों में समाप्त हुआ। पाण्डुलिपि लेकर मैं श्री लूणियाँ जी के पास गया और उन्हें पाण्डुलिपि दी। उन्होंने पेटी से निकाल कर मुझे ५०) रु० दिए और १००) रु० श्री गौड़जी के लिए पारिश्रमिक दिए। मैंने भी तत्काल वे रुपए जाकर श्री गौड़ जी को दिए। श्री गौड़ जी उसमें से ५०) रुपए मुझे देकर बोले कि "अनुवाद-कार्य के लिखने-लिखाने में हम दोनों सहयोगी रहे हैं, इसलिए 'अर्धमर्धं त्वया मया'—दोनों पार्टनर हैं।" मैंने कहा—'लूणिया जी ने ५०) रुपए मुझे दे दिए हैं, अब ये १००) रुपए आपकी भेंट है।" तब उन्होंने जल-पान कराकर मुझे विदा किया और बोले कि "यथावकाश दर्शन देते रहिएगा।" मैं बोला—"हाँ-हाँ! अवश्य! जय शिव!"

एक सप्ताह बाद मैं 'पियरी' की ओर गया। उधर से श्री गौड़जी के यहाँ पहुँच गया। उस समय कुछ लिखने बैठे थे। मुझे देखकर खड़े हो गए और दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। आसन पर आसीन कराकर पूछा कि "कहिए, कैसे शुभागमन हुआ?" मैंने कहा—"आपसे आज भूत-प्रेत के सम्बन्ध में कुछ शङ्का-समाधान करना है।"

वे हँसकर बोले कि "ठीक है। लोग मुझे 'भूत-विद्या-विशारद' कहते हैं। आप भी जानते होंगे?"

मैंने कहा—"वास्तव में भूत हैं या नहीं? यदि हैं, तो वे कहाँ और कैसे हैं? और यदि नहीं हैं, तो फिर उनका नाम लेना ही व्यर्थ है। आपका मत क्या है? कृपया समाधान करें।"

गौड़ जी हँस कर बोले—"पण्डित जी! मुझे तो सदा, सभी स्थान पर भूत-ही-भूत दिखाई देता है। एक नहीं, अनेक भूत हैं। उनके नाम तथा रूप भी भिन्न-भिन्न हैं। सारा संसार ही भूत है। भगवान् भूतनाथ से सारा संसार उत्पन्न है और उन्हीं में लीन हो रहा है।

"समय का नाम काल है। काल तीन होते हैं—१ भूत, २ वर्तमान और ३ भविष्य। जो बीत गया, उसे 'भूत-काल' कहते हैं। जो चल रहा है, उसे 'वर्तमान-काल' और जो आनेवाला है, उसे 'भविष्य-काल' कहते हैं। इस प्रकार 'भूत-काल' वर्तमान-काल का बाप और भविष्य-काल का दादा है। फिर वही 'भविष्य-काल', वर्तमान-काल का बाप और भूत-काल का दादा बन जाता है। यह कार्य-क्रम अनिवार्य है।

"देखिए, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये भी भूत के पाँच नाम हैं। पाँचों मिलकर 'पञ्च-महा-भूत' कहलाते हैं। पाँचों मिलकर सृजन करते हैं और विलग होकर नाश करते हैं। इस प्रकार पञ्च-महा-भूतों से युक्त आप भी 'भूत' ही हैं और हम भी 'भूत' हैं। मनुष्य महा-भूतों से बना 'महा-महा-भूत' ही प्रमाणित होता है।

"सृष्टि-स्थिति-प्रलय करनेवाले ब्रह्मा-विष्णु-महेश—त्रि-देव भी भूतों के 'भूत' हैं भाई, कोई माने या न माने, यह शास्त्रार्थ का विषय नहीं है। मेरे मत से भूत-ऊत कुछ नहीं, भ्रम-ही-भ्रम है। जो माने, उसके लिए 'भूत' है और जो न माने, उसके लिए यही भाषा-परिभाषा है। समझ गए,……।"

मैंने कहा—"आपके द्वारा प्रमाणित भूतों से मैं सहमत हूँ। आप निश्चय ही 'भूत-विद्या-विशारद' हैं। अनेकशः धन्यवाद! महा-कवि तुलसीदास ने तभी तो कहा है—'जाकी रही भावना जैसी, हरि-मूरति देखी तिन तैसी।' यदि कोई पूछेगा, तो मैं कह दूँगा कि गौड़जी ने मुझे एक ही नहीं—अनेक 'भूत' दिखाए हैं।"

११ श्री बच्चू जी 'सूर-व्यास' (प्रज्ञा-चक्षु)

श्री बच्चू जी 'सूर-व्यास' (प्रज्ञा-चक्षु) कथा-वाचक थे। इनकी कथा सुनने का कई बार मुझे भी अवसर मिला। जहाँ तक मुझे ज्ञात हुआ, उसके अनुसार, वे काशी-मण्डल में किसी गाँव में पैदा हुए थे। जाति के ब्राह्मण थे। मूल नक्षत्र में जन्मे थे। माता-पिता ने इनको दशाश्वमेध-घाट पर त्याग दिया था। संयोग से एक दयालु साधु की दृष्टि इन पर पड़ी। उन्होंने इनका पालन-पोषण किया। इनको शिक्षा-दीक्षा दी। 'श्री राम-चरित-मानस' के सातों काण्ड कण्ठस्थ करा दिए। वे जहाँ कहीं तीर्थ-स्थान पर जाते, वहाँ इनसे नित्य 'राम-चरित-मानस' का पाठ सुनते थे।

२५ वर्ष के होने पर इनके धर्म-पिता—धर्म-गुरु अयोध्या जी में चैत्र शुक्ल नवमी को वैकुण्ठ-वासी हो गए और बच्चू जी सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र हो गए। इनका कोई आश्रय-दाता नहीं रह गया। ये केवल 'राम-कथा' कहते और जो कुछ नित्य आरती एवं पूर्णाहुति में मिलता, उसी से अपना जीवन-निर्वाह करते। एक दीन ब्राह्मण को सेवक रख लिया था, जो सदा इनके साथ रहकर इनकी पूरी सेवा करता। उसी को, जो कुछ कथा-वाचकी से मिलता, दे दिया करते। इस प्रकार ये वृन्दावन, हरद्वार, प्रयाग, काशी आदि तीर्थ-स्थानों में भ्रमण करते रहे।

इन सूरदास जी में बड़ी विलक्षण प्रतिभा - शक्ति थी। एक बार जो भी सुन लेते, कभी भूलते न थे। कहते समय वीरासन से बैठते और बड़े ताल-स्वर से थपेड़ी बजाकर गाने लगते। प्रत्येक दोहे पर क्षण भर विश्राम ले लिया करते। कभी-कभी लोग उनकी स्मरण-शक्ति की परीक्षा लेते। पूछ लेते कि "सूरदास जी ! अमुक चौपाई या दोहा कहाँ का है ?" ये तुरन्त बोल उठते कि "यह चौपाई या दोहा अमुक काण्ड का है और इसके बाद यह है...।" फिर उसके आगे का पद्य धारावाहिक गाने लगते।

कथा की समाप्ति पर तुलसी-दल खाते और प्रसाद-रूप में बँटवाते। हाँ, तुलसी-दल से पूर्व आरती-गान होता—"**कीरति कलित ललित सिय जी की, आरति श्री रामायन जी की**' इत्यादि।

बच्चू जी व्रतोपवास में फलाहार करते, चौकी या पृथ्वी पर सोते। स्वच्छ धोती व बगलबन्दी (मिर्जई) पहनते। चादर ओढ़ते व कम्बल बिछाते। उनका जीवन बड़ा ही सात्विक था। माथे पर चन्दन और भस्म लगाते। विष्णु और शिव—दोनों के भक्त थे।

बच्चू जी आशु कवि थे। कभी-कभी गद्दी पर चौपाई-दोहों की रचना सन्तों की खड़ी बोली में करने लग जाते। कोई 'समस्या' देने पर किसी भी रस में उसकी पूर्ति कर देते। श्रृङ्गार, वीर, करुण और हास्य रस के दर्शाने में ऐसी निपुणता दिखाते कि श्रोता लोग तालियों की गड़गड़ाहट और 'सूर-दास की जय !' की ध्वनि से वायु-मण्डल को गुँजा देते। उनसे उनका परिचय पूछने पर वे अपना पद्य-बद्ध परिचय इस प्रकार दिया करते—

बच्चू जी नाम पड़ा मेरा, मैं जन्म-काल से अन्धा।
मुझको केवल अच्छा लगता, रामायन गाने का धन्धा ।।
मैं काशी का ही वासी हूँ—पर और जगह भी जाता हूँ।
जो कुछ भक्तों से मिलता है, उससे ही जीता-खाता हूँ ।।
माँ-बाप कौन थे—पता नहीं, गुरुदेव सन्त ने ज्ञान दिया।
जनता ने मुझको अपनाया, अपनी सेवा से मान दिया ।।
मेरा परिचय कुछ मत पूछो, जो भी चाहो वह ज्ञात करो।
हरि-कथा सुनानेवाला हूँ, फिर और न दूजी बात करो ।।

बच्चू जी में एक बड़ी विचित्रता यह थी कि वे किसी के मूक प्रश्न और गुप्त बात का उद्-घाटन करने में अपूर्व चमत्कार दिखाकर सबको चकित कर देते थे। यह चमत्कार वे गुरुवार को कथा से पहले किया करते थे। केवल दो ही प्रश्नों का उत्तर देने का नियम रखा था। यह शक्ति उन्हें कहाँ से प्राप्त हुई थी, इसके विषय में लोग कहते थे कि किसी सन्त महात्मा सिद्ध से उन्हें यह प्रसाद मिला था। वास्तव में उन्हें 'कर्ण-पिशाची' मन्त्र सिद्ध था। प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व वे उसी को लक्ष्य कर कहा करते थे "क्या तुम आ गईं? अच्छा, अब तुम मेरी जीभ से प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दिलवाओ।' इसके बाद वे कहते—"भाई! कोई भी प्रश्न पूछो, उत्तर मिलेगा किन्तु देखो, छल न करना। उत्तर सच हो, तो स्वीकार करना कि हाँ, सच है।"

एक दिन मैं भी गुरुवार को सूर जी की कथा में गया। उनके एलान करने पर एक ने पूछा—"महाराज! मैं कौन हूँ, कहाँ का रहनेवाला हूँ और क्या करता हूँ?"

बच्चू जी ने कहा—"सुनो! तुम्हारा नाम मक्खू उपाध्या है। तुम जौनपुर में बक्सा गाँव के निवासी हो और कलकत्ते में श्री महेश्वरी भवन के दरबान हो। बोलो, बात सही है?"

उस प्रश्न-कर्त्ता ने कहा—"महाराज! आप अगम-जानी हैं। सच कहते हैं।"

बच्चू जी ने फिर एलान किया—"और कोई है?" मैंने खड़े होकर उन्हें प्रणाम किया और पूछा कि "व्यास जी महाराज! मैं कौन हूँ?" वे हँसकर बोले—"आप तो एक विख्यात कवि हैं। लोग आपको 'कवि-पुष्कर' कहते हैं। आप रामायण-गीता-श्रीमद्भागवत पुराण के व्यास—कथा-वाचक भी हैं। रामनगर, काशी-राज्य के निवासी हैं। धन्यवाद, नमस्कार।"

मैंने कहा—"मैं आपके नमस्कार को नमस्कार करता हूँ। आपका आसन, जितने व्यास—कथा-वाचक हैं, सबसे ऊँचा है। आप एक लोकोत्तर पुरुष हैं। धन्य, धन्य! मैं आपसे शुभाशीर्वाद चाहता हूँ कि मुझमें मातृ-भूमि और मातृ-भाषा की सेवा-शक्ति जीवन-पर्यन्त बनी रहे।"

उन्होंने कहा—"आपकी जय हो, जय हो।"

१२ श्री सिद्धेश्वरी जी (योग-माया)

काशी में श्री सिद्धेश्वरी जी (योग-माया) अपने समय में बड़ी विख्यात महिला थीं। आपका आश्रम 'गुरु-धाम', दुर्गा-कुण्ड पर पुलिस चौकी के पास था। उसके बगल में महाराज ढिंगवस की एक कोठी थी। इस कोठी में 'राम' नामक सचित्र मासिक पत्र का कार्यालय भी था। मैं सन् १९२७ ई० में इस मासिक पत्र का प्रधान सम्पादक था।

योग-माया जी ब्राह्मणी और बाल-ब्रह्म-चारिणी थीं। सन् १९२७ में आप लगभग ४० वर्षीया गौर-वर्णा आकर्षक स्त्री थीं। कहते हैं कि आप 'बनपुरवा' के बाबा स्वामी पीतरागानन्द जी (अवधूत) की शिष्या थीं। 'दीक्षा' लेने के बाद आप अविवाहित रहकर, योग-साधना में लग गईं, जिसमें आपको पर्याप्त सफलता मिली।

उस समय आपके आश्रम में आपके अतिरिक्त लगभग १८-२० बालिकायें और युवतियाँ भी थीं, जो आपकी शिष्या बनकर ब्रह्मचर्य-पूर्वक 'योग-साधना' में संलग्न थीं। इनके माता-पिता ने इन्हें योग-माया जी के सान्निध्य में आश्रम में प्रविष्ट कराया था। ये लोग यथा-समय अपनी-अपनी पुत्रियों को अन्न-वस्त्र और कुछ नगद द्रव्य भी प्रति-मास पहुँचा दिया करते थे। इनके अतिरिक्त कलकत्ता—

बम्बई के यात्री सेठ महोदय भी काशी आने पर कुछ-न-कुछ प्रदान कर जाते थे। ये ब्रह्म-चारिणियाँ स्वयं भोजन बनातीं, योग-माया जी को खिलातीं और स्वयं खातीं। इस कार्य हेतु ब्रह्म-चारिणियों की सेवा में दो परिचारिकायें भी नियुक्त थीं।

आश्रम के द्वार पर पहरे-दार भी नियुक्त थे। ये वेतन पाते थे। भीतर से आज्ञा प्राप्त होने पर ही ये किसी को आश्रम के अन्दर जाने देते थे। मैं प्रति-मास इस आश्रम में मासिक-पत्र 'राम' की प्रति धर्मार्थ भेज दिया करता था। इसलिए योग-माया जी मुझे जानती थीं।

एक दिन मैं 'राम' मासिक-पत्र का एक विशेषाङ्क लेकर योग-माया जी के यहाँ गया। इसी बहाने आपके दर्शन की अभिलाषा पूरी करनी थी। द्वार-पाल के हाथ से विशेषाङ्क भेज दिया और उसी से कहलाया कि 'सम्पादक जी आपके दर्शन चाहते हैं।' वह भीतर गया और तुरन्त आज्ञा लेकर आया। आज्ञानुसार मैं भीतर गया। मैंने देखा कि आप एक चौकी पर प्रसन्न-मुद्रा में बैठी हैं। मैंने हाथ जोड़ कर अभिवादन किया और निर्देशानुसार रखवाए हुए आसन पर बैठ गया।

योग-माया जी बोलीं—"कहिए, कैसे पधारने का कष्ट किया ?"

मैं—"केवल दर्शनार्थ ! कदाचित् आप मुझसे परिचित न होंगी।"

योग-माया जी मुस्करा कर बोलीं—"मैं तो 'राम' के सम्पादक-रूप में आपको बहुत समय से जानती हूँ। आपकी कविताएँ ओज, माधुर्य और प्रसाद-मण्डित होती हैं। प्रत्येक लेख भी प्रामाणिक तथ्यों से भरे रहते हैं।"

मैं—"माता जी ! गुण-ग्राहकता के लिए हार्दिक धन्यवाद ! क्या मैं आपसे इस आश्रम के सम्बन्ध में कुछ पूछने का साहस कर सकता हूँ ?"

योग-माया जी—"हाँ—हाँ। आप प्रसन्नता से पूछें।"

मैं—"यह योगाश्रम किसने स्थापित किया ? इसका सञ्चालक कौन है और इसके उद्देश्य-नियम क्या हैं ? कृपया बताइए।"

योग-माया जी—"मान्यवर, यह आश्रम तो मेरे दीक्षा-गुरु महाराज की प्रेरणा से स्थापित हुआ है। उन्होंने ही कहा कि 'योग-विद्या' का प्रचार स्त्रियों में भी करना आवश्यक है। उनके ही भक्त प्रेमियों ने इस स्थान की समुचित व्यवस्था कर इसके सञ्चालन का भार मुझे सौंपा है। यहाँ का उद्देश्य-नियम यही है कि कन्याओं को ब्रह्म-चर्य-पालन और योग-साधना की शिक्षा दी जाए। उनके अभिभावक जितने समय तक चाहें, अपनी कन्या को आश्रम में रखकर लिवा ले जाएँ और इच्छानुसार उनका सुयोग्य वर से विवाह कर दें, लेकिन कम-से-कम ५ वर्षों के लिए उन्हें कन्या को यहाँ आश्रम में रखना होगा। ५ वर्षों के बाद जो कन्या घर नहीं जाना चाहती, वह चाहे तो अपने अभिभावक से पुनः स्वीकृति लेकर इच्छानुसार कुछ समय तक और भी आश्रम-वासिनी होकर रह सकती है।"

मैं—"कन्याओं को ब्रह्मचर्य और योग की क्या शिक्षा दी जाती है।"

योग-माया जी—"देखिए, 'ब्रह्मचर्य' और 'योग'— दो विषय हैं, परन्तु दोनों ही एक दूसरे के सहायक हैं। 'ब्रह्मचर्य-पालन' में 'योग' की आवश्यकता होती है एवं 'योग-साधना' में 'ब्रह्मचर्य' सहायता देता है। दोनों मिलकर ही तपस्या की सिद्धि देते हैं। 'अथर्व-वेद' में 'ब्रह्मचर्य-सूत्र' है, उसमें ब्रह्मचर्य को 'तप' माना गया है और यह भी बतलाया गया है कि इसके द्वारा 'बुद्धि'—बल का विकास होता है। इसके पालन से प्रत्येक कार्य में सफलता मिलती है। केवल पुरुषों के लिए ही नहीं, अपितु स्त्रियों के लिए भी यह अत्यन्त उपयोगी है।

'ब्रह्मचर्येण कन्या, युवानं विन्दते पतिम्'—अर्थात् कन्या को चाहिए कि ब्रह्मचर्य का पालन करके, युवती होने पर सु-योग्य पति का वरण करे। यह विवाह का नियम है। ब्रह्मचर्य-रूपी 'तप' को मन, वचन और कर्म—तीनों से सँभालना पड़ता है। यह सँभलता कैसे है? 'योग' द्वारा। दूसरा अन्य कोई उपाय नहीं है। छः दर्शन-शास्त्रों में एक 'योग-दर्शन' भी है, जो महर्षि योगाचार्य पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित है।"

यह सब सुनकर मेरे मन को परम शान्ति का अनुभव हुआ। योग-मीया जी को भूरि-भूरि धन्यवाद देते हुए, मैं वहाँ से आज्ञा लेकर आश्रम के बाहर चला आया।

१३ योगि-राज श्री गुरुनाथ जी (अवधूत)

ये महात्मा गगन बावड़ा (कोल्हापुर स्टेट) के मूल निवासी दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। इनके पिता संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे, जो वहाँ के महा-विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे। आपकी दो सन्तानें थीं—एक पुत्र और एक पुत्री। ज्येष्ठ श्री गुरुनाथ जी रहे। आपको पहले व्याकरण, कोष और काव्य की शिक्षा प्राप्त हुई, फिर अंग्रेजी पढ़ने लगे। मुम्बई विश्व-विद्यालय से इतिहास लेकर बी० ए०, एम० ए० उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपकी नियुक्ति कोल्हापुर के महाराज-कुमार के निजी शिक्षक के रूप में हुई।

शीघ्र ही आपका विवाह एक सुन्दरी कन्या से हुआ। तभी वयोवृद्ध पिता का स्वर्ग-वास हो गया। गृहस्थाश्रम का सम्पूर्ण भार आपके कन्धों पर आ गया। अपनी बहिन की शादी आपने बहुत धूमधाम से कर दी। कुछ ही समय में आप भी दो पुत्रों और दो पुत्रियों के पिता हो गए। चार मूर्तियों के लालन-पालन का सङ्कट आपको सताने लगा। आप उद्विग्न होकर एक दिन भोर में घर से भाग निकले।

उस समय आपके पास धोती, दुपट्टा और एक लोटे के अतिरिक्त कुछ भी न था। किसी प्रकार आप गिरनार पर्वत तक पहुँचे, जो नवाबी स्टेट जूनागढ़ में स्थित है। वहाँ एक सिद्ध सन्त से भेंट हुई, जो अवधूत थे, सर्वाङ्ग नंगे रहते थे, कभी-कभी पेड़ की छाल की लँगोटी लगाते थे। इनसे आपने दीक्षा ली। अवधूत जी ने आपको पात्र समझकर 'प्रत्यक्ष समाधि' लगाकर दिखाई। एक सिंह के शरीर में प्राण-परिवर्तन या पर-काया-प्रवेश करके भी अवलोकन कराया। अन्तर्यामित्व और शतावधानत्व - जैसी गुप्त-विधाओं में आपको पारङ्गत किया तथा १२ वर्ष पूर्ण होने पर, योगिनी-एकादशी के दिन आपको सावधान कर पद्मासन पर विराजते हुए दीर्घ श्वास द्वारा पञ्च-प्राणों को समाहित कर ब्रह्माण्ड-भेदन द्वारा शरीर-त्याग कर दिया।

श्री गुरुदेव के ब्रह्मीभूत होने पर आपका मन वहाँ नहीं लगा। तब वृक्ष की छाल की लँगोटी पहने हुए, सर्वाङ्ग में भस्म लगाए हुए, आपने चार धामों और सात पुरियों का भ्रमण किया। तीर्थ-स्थानों में आप मीठे स्वर में भगवन्नाम-कीर्त्तन करते, जिससे नर-नारियों की भीड़ एकत्र हो जाती। कीर्त्तन-भजन आप खड़े होकर नाच-नाच कर करते, भाव भी दरसाते। शिर पर रुद्राक्ष का मुकुट, दोनों हाथों में कर-ताल और दोनों पैरों में पीतल के घुँघरू बाँधते थे।

सन् १६३० की बात है। उन दिनों मैं नित्य सायं-काल सन्ध्या-वन्दन करने के लिए दशाश्व-मेध-घाट पर जाया करता था। एक दिन ज्यों ही मैं सीढ़ी उतरने लगा, मुझे लोगों की बड़ी भीड़ दीख पड़ी। 'हर-हर-महादेव' की जयकार भी सुनाई पड़ी। भीड़ में घुसने पर मैंने देखा कि श्री गुरुनाथ जी

करताल बजाते हुए उन्मत्त होकर कीर्त्तन करते हुए नाच रहे हैं। कीर्त्तन आधे घण्टे तक चला। कौतूहल-वश मैं भी आपके पीछे चला। आप श्री राम-मन्दिर के नीचेवाली कोठरी (गुफा) में घुस गए और बोले—"भागो-रे-भागो।" फिर दरवाजा बन्द कर लिया।

कभी-कभी आप कीर्त्तन बन्द कर धाड़ मार कर रोने लगते और कभी ठठा कर खूब हँसा करते। सब लोग आश्चर्य-चकित होकर पूछते, परन्तु आप किसी प्रश्न का कोई उत्तर न देते। मैंने मन-ही-मन समझ लिया कि आप कोई सिद्ध सन्त हैं। एक दिन मैं पुनः आपके पीछे-पीछे गुफा तक गया। आपने मुझे बड़े गौर से देखा और पूछा—"तू कौन है? मेरे पीछे प्रायः लगा रहता है। बोल!"

मैंने कहा—"जाऊँ कहाँ तजि चरण तिहारे? काके नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे?"

इतना सुनकर आपने मेरा हाथ पकड़ लिया और गुफा में घसीट किवाड़ी बन्द कर ली। गुफा में मुझे एक कुशासन पर बैठा दिया। मस्तक पर विभूति लगा दी और अपने कण्ठ की माला पहना दी। मैं चुप-चाप हाथ जोड़े हुए बैठा रहा।

आप बोले—"मैं तुझसे कुछ भिक्षा माँगना चाहता हूँ। दोगे? बोल!"

मैंने कहा—"महाराज! आप तो एक सिद्ध सन्त हैं। मैं आपको क्या दे सकता हूँ? आपकी सेवा में रहकर अपना आत्म-कल्याण करना चाहता हूँ। अधिक क्या नम्र निवेदन करूँ।"

आप बोले—"बाबा! मैं तो कुछ नहीं! जो चाहो, सो कहो!" फिर आँसू बहाते हुए, करताल बजाकर गाने लगे—

मैं तो कुछु नाहीं प्रभो, तेरी प्रभुताई है।
तू ही तमासा है प्रभो, तू ही तमाशाई है!

इत्यादि! गा लेने के पश्चात् कहा कि "आप किसी भी समय आकर यहीं मुझसे मिला करिए। दरवाजा बन्द रहे, तो आप तीन बार थपथपाइएगा। मैं आपको भीतर कर लूँगा। घण्टे-डेढ़ घण्टे तक आप अपने आसन पर बैठकर तमाशा देखिएगा। मन में कोई शङ्का उठे, तो निर्भय होकर उसका समाधान कर लीजिएगा।"

स्वामी जी से सत्सङ्ग करते हुए ७–८ वर्ष बीत गए। इन ७–८ वर्षों के सान्निध्य से मुझे यह स्पष्ट हो गया कि स्वामी जी विलक्षणताओं के अगाध समुद्र थे, विविध विद्याओं के अपूर्व भण्डार थे, साहित्य-सङ्गीत-कला-मर्मज्ञ थे। इड़ा-पिङ्गला-सुषुम्णा—तीनों नाड़ियों के ज्ञाता थे। परा-पश्यन्ती-मध्यमा और वैखरी—चारों प्रकार की वाणियों से काम लेते थे। सामुद्रिक विद्या, कर, कपाल और कुण्डली (जन्म-पत्री) देखकर फलादेश करते थे। स्वरोदय का भी ज्ञान रखते थे। सूर्य, चन्द्र आदि स्वरूप और उनसे काम लेने की विधि बताते और कहते कि अमुक समय अमुक स्वर चलता है और साधक उनको इच्छानुसार चला भी सकता है।

वह मानव-शरीर के अन्तर्गत त्रिपुटी-चक्र, सहस्रार, ब्रह्म-रन्ध्र, कुण्डलिनी, वैतरणी, सर्पिणी आदि रूपों, स्थानों की विशद व्याख्या करते एवं उनके साधने के उपाय भी बताते। स्वामी जी शकुन-विचार, सम्मोहन, स्वरूप-परिवर्त्तन और पर-काय-प्रवेश की भी जानकारी रखते थे। वे शतावधानी थे। एक साथ कई कार्य प्रारम्भ कर सबको एक साथ समाप्त कर देते थे। आपके पास एक काठ के बक्स में हठ-योग की प्रचुर सामग्री थी। नाना प्रकार के रंग-बिरंगे कपड़े, गहने और खिलौने भी थे, जिनका

यथा-सम्भव आप प्रयोग भी करते। सज्जीकरण का कार्य एकान्त में करके, आप सबके सामने आते और नाना प्रकार के चमत्कार दिखाते।

राम, कृष्ण, सीता, राधा, गोप-गोपी, शिव, नारद, हनुमान, उद्धव आदि किसी का सुन्दर स्वरूप आप धारण करते और उस रूप में वैसा ही कीर्त्तन-नृत्य भी दिखलाते। आपका स्त्री-रूप देखकर सभी लोग आश्चर्य-चकित हो जाते। उस समय आपके हाव-भाव, कटाक्ष, वार्त्तालाप, चाल, चिन्तन, मुसकान—सभी में स्त्री-सुलभ आकर्षण रहता था।

एक दिन आपने कहा कि "आज मैं तुम्हें अपनी कुछ बदमाशी (सिद्धि) दिखाऊँगा। तुम ध्यान-पूर्वक देखना। मैं मुँह बन्द कर 'भस्त्रिका' करूँगा। तुम मेरी दाहिनी भुजा पर कान लगा कर सुनना, तुम्हें 'सीता-राम, सीता-राम' और बाईं भुजा पर 'राधेश्याम-राधेश्याम' की ध्वनि सुनाई देगी।"

भस्त्रिका प्रारम्भ होने पर मैंने उनकी दाहिनी भुजा पर कान लगाया, तो 'सीता-राम' स्पष्ट सुनाई पड़ा और बाईं पर 'राधेश्याम' स्वर सुनाई पड़ा।

एक दिन कहा कि— "पशु-पक्षी भी अन्तर्यामी होते हैं। वे भी बात समझते हैं और मानते हैं।" इतने में एक बड़ा बकरा कुटी के पास आकर स्वामी जी को देखने लगा। आप बोले—"बाबा! तू सिगरेट पीने का बड़ा शौकीन है। अच्छा, ऊपर आकर बैठ—मैं तुझे अभी सिगरेट पिलाता हूँ।" वह ऊपर आकर बैठ गया। स्वामी जी ने एक सिगरेट उसके मुँह में थमा दी, दियासलाई घिस कर सुलगा दी। वह भी फूँक-फूँक कर पीने लगा और दोनों नथुनों से धुआँ निकालने लगा!

स्वामी जी की कुटिया में देवी-देवताओं की सैकड़ों मूर्तियाँ इकट्ठी हो गई थीं। नित्य स्नान करके आप सभी पर चन्दन-पुष्प चढ़ाकर आरती करते और कहते-"तुम सबों की चाल देख रहा हूँ! घण्टों का समय गुलामी बजाने में लग जाता है।"

एक दिन आपने एक दुशाले में सभी मूर्तियों को लपेट लिया। जब मैं कुटी में आया और मैंने देखा कि एक भी मूर्ति नहीं है, तब मैंने पूछा कि "महाराज! मूर्तियाँ क्या हुईं?" आपने कहा कि "चुप रहो! बोलो मत!! सब दुशाले में बँधी हैं। इन्हें गङ्गा जी में डुबाऊँगा।" यह कह कर कीर्त्तन करते हुए गठरी को गङ्गा जी में फेंक आए और लौटकर कहा कि "अब मैं आजाद हो गया। समझ गए!"

अन्त में स्वामी जी की मेरे ऊपर विशेष कृपा का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ। उन दिनों मैं 'कवि-पुष्कर' के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। जब स्वामी जी ने यह सुना, तब मुझसे पूछा कि "आप 'कवि-पुष्कर' कहलाते हैं। आपने ९ रसों का निर्वाह अपनी कविताओं में किया ही होगा, किन्तु क्या आपने नवों रसों का दर्शन किया है?"

मैंने कहा—"स्वामी जी! मैंने सभी रसों में कविताएँ की हैं, उनके लक्षणों-स्थायी भावों को अवश्य जानता हूँ, किन्तु रसों का दर्शन मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।"

स्वामी जी बोले कि "तुम क्रम से सभी रसों के नाम बता दो। मैं तुम्हें क्रमशः ९ दिनों में उनका रूप बनाकर दिखाऊँगा।" स्वामी जी की बात सुनकर मेरे मन में रसों के रूपों का दर्शन करने की उत्कट लालसा पैदा हुई। अतः मैंने एक कागज पर उनके नामों को लिख कर आपके सामने रख दिया—१ शृङ्गार, २ हास्य, ३ करुण, ४ रौद्र, ५ वीर, ६ भयानक, ७ वीभत्स, ८ अद्भुत और ९ शान्त।

दूसरे दिन जब कुटी का द्वार खुलवाया, तो देखा कि सुन्दर शृङ्गार का रूप बनाकर स्वामी जी मुसकरा रहे हैं। मैंने झुककर प्रणाम किया। इसी प्रकार नौ दिनों में ९ रसों के रूप बनाते गए और

मैं मनोयोग-पूर्वक उनके दर्शन करता रहा। दसवें दिन आप चुपचाप बैठे थे। मुझे देखकर पूछ बैठे कि-"कवि जी ! सभी रसों में मुझे ठीक सफलता मिली या नहीं ?"

मैंने कहा—"प्रभो ! आप स्वयं काव्य हैं। सभी रस आपके भीतर रक्त के समान दौड़ते रहते हैं। हाँ, एक दसवाँ रस—'वात्सल्य' भी है, जो सभी रसों में व्याप्त रमता रहता है, क्योंकि प्रत्येक बच्चे में जन्म के साथ ही वह जन्म लेता है। इस 'वात्सल्य रस' को भी देखना चाहता हूँ।"

स्वामी जी ने कहा—"अभी लो ! अवलोकन करो !" इतना कह आप चादर फेंक कर लोटने लगे–धूनी की राख पोतने लगे। बच्चे की भाँति अपने पैर का अँगूठा मुँह में चूसने लगे। कभी रोते—कभी हँसते। कभी उछलते–कभी कूदते। कई मिट्टी के खिलौनों को पटक कर तोड़ दिया। चौकी पर धरा हुआ मक्खन कुछ खाया—कुछ मुँह पर पोता—कुछ जमीन में लीप दिया और पुनः खाने लगे। मेरी गोद में बैठ कर मेरे नाक-कान नोचने लगे !

मैं घबरा गया। मेरे मना करने पर भी न माने—तोतली वाणी में अटपटी बोलते रहे। फिर स्वयं हँसकर बोले –"बाबा ! बाल-हठ कैसा होता है !—देख लिया ?"

मैं बोल उठा—"महाराज ! आप धन्य हैं। आपको मैं दशों रसों का दशावतार मानता हूँ।"

स्वामी जी बोले—"बाबा ! विश्व खेल है—खेल चलो ! सबसे करते मेल चलो !……तुम रस-रूप भगवान् का ध्यान कर लेखनी चलाना। जिस रस का ध्यान करोगे, वही परिपक्व होकर सम्पूर्ण गद्य-पद्य रचना को सुशोभित कर देगा।"

मैंने कहा—"आपने रसों का रहस्य दर्शाकर मुझे कृतार्थ कर दिया। आप धन्य हैं !"

भस्त्रिका प्राणायाम की प्रतिष्ठा—एक दिन स्वामी जी हठ-योग-क्रिया करके बड़ी शान्त-मुद्रा में बैठ कर पसीना पोंछ रहे थे। मैंने आकर अभिवादन किया। बैठने पर आपने कहा—"आज मैं तुम्हें सबसे सरल, सुन्दर और साधनीय—'भस्त्रिका-प्राणायाम' की शिक्षा देना चाहता हूँ। यह 'शीर्षासन' से लेकर 'शवासन' तक में अत्यन्त उपयोगी है। तुम नित्य नियम से यदि इस प्राणायाम की प्रतिष्ठा कर सकोगे, तो सब प्रकार तुम्हारा कल्याण होगा।

"देखो, मैं सभी आसनों का प्रायः अभ्यास किया करता हूँ, किन्तु 'भस्त्रिका-प्राणायाम' को तो दिन-रात में कई बार करके मैं अनिर्वचनीय सुख पाता हूँ। इसकी साधना से यावज्जीवन तेजस्विता, महत्ता, स्वस्थता और दीर्घायु प्राप्त होती है। इसे तुम हठ-योग की अन्य क्रियाओं का सारांश समझो।

"भस्त्रिका का अर्थ है—'भाथी'। जैसे सुनार और लुहार आदि भाथी चलाकर आग को प्रचण्ड कर देते हैं और उसमें सोने-चाँदी तथा लोहे और जस्ते को गला देते हैं, तीव्र ताप में धातुओं का मल भस्म हो जाता है, वैसे ही यह 'भस्त्रिका-प्राणायाम' शरीर के सब अङ्गों के दोषों को जलाकर शुद्ध रक्त का सञ्चार कर देता है।"

मैंने कहा—"महाराज जी ! कृपया बताइए, यह कब, कहाँ और कैसे किया जाता है ?"

स्वामी जी बोले—"भस्त्रिका-प्राणायाम जब चाहे तब और जहाँ चाहे, वहाँ किया जा सकता है। इसके लिए सबसे अधिक एकान्त स्थान ही ठीक है। साधक एक आसन पर पद्मासन या सुखासन से बैठ जाय। फिर सिर को ऊपर, मेरु-दण्ड को सीधा रखकर, पहले पेट को यथेष्ट सिकोड़ कर श्वास को बाहर कर दे। फिर बार-बार आकुंचन-अकुंचन लगातार करता जाए। यह क्रिया ५ से १० मिनट तक करता रहे।

"हाँ, साधक को चाहिए कि वह इसे शौच से पहले, भोजन से पहले, शयन से पहले करे। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार के शारीरिक और मानसिक परिश्रम के पश्चात् भी इसे करके विश्राम करे।"

इतना कहकर स्वामी जी ने स्वयं साधना करके दिखाया और मुझसे भी करवा कर देखा। तब से मैं 'भस्त्रिका-साधना' निरन्तर करने लगा। मेरा स्वयं का अनुभव है कि इससे मल-मूत्र का शोधन, पाचन-क्रिया का विकास, निद्रा में आनन्द और कार्य करने में उत्साह, साहस तथा मनोबल की वृद्धि हो जाती है। अध्यात्म-मार्ग में आगे बढ़ने के लिए यह साधना अत्यन्त उपयोगी है।

स्वामी जी द्वारा अन्तिम समय की सूचना—सन् १६५८ की बात है। एक दिन मैं यथा-समय स्वामी जी के यहाँ पहुँचा। स्वामी जी चुप-चाप पद्मासन लगाकर बैठे हुए मानों मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। पहुँचते ही बोल उठे—"आओ, आओ, मैं तुम्हारी ही राह देख रहा था। मेरी बात ध्यान-पूर्वक सुनो। मैंने हठ-योग की साधना से अपने सम्पूर्ण शरीर को जर्जर कर डाला है। अब यह रहने योग्य नहीं रह गया है। ब्रह्म-लीन होने में ही आनन्द है। इसके लिए किसी को कोई पश्चात्ताप न होना चाहिए।

"कल मैं जननी जन्म-भूमि के दर्शन हेतु यात्रा करूँगा। वहाँ परिक्रमा में अन्तिम प्रणाम कर सीधे काशी आ जाऊँगा। यहाँ अपनी इस कुटी में तीन दिनों तक विश्राम कर अन्नपूर्णा जी, विश्वनाथ जी आदि के दर्शन करूँगा। चौथे दिन अर्ध-रात्रि में प्राचीन महर्षियों द्वारा निर्दिष्ट योग-पद्धति से प्राण-विसर्जन कर दूँगा। यह भी सुन लो कि क्या और कैसे करूँगा।

"पहले मैं कुशासन पर पद्मासन लगाकर बैठ जाऊँगा। फिर १०-१५ मिनट तक 'भस्त्रिका-प्राणायाम' से समस्त नाड़ी-शिराओं की शुद्धि कर पञ्च-प्राणों को खींच कर ब्रह्माण्ड में ले जाऊँगा। तब 'हुँ' उच्चारण कर एक झटके में ब्रह्म-रन्ध्र से प्राणों को विसर्जित कर दूँगा। मेरे शव को गेरुवे वस्त्र में ढँक कर गङ्गाजी की बीच धारा में प्रवाहित कर देना।

"प्रिय-वर 'कवि-पुष्कर' जी! अब आज के बाद इस स्थान पर फिर तुमसे भेंट न हो सकेगी। मैं तुमको अपना अन्तिम रूप दिखाना नहीं चाहता। तुम्हारे लिए मैं सदैव जीवित रहूँगा। आज मेरा तुमको अन्तिम शुभाशीर्वाद है कि तुम सपरिवार धन-धान्य से समृद्ध होकर फलो-फूलो एवं तुम्हारी लेखनी तथा वाणी यावज्जीवन चलती रहे—सुकीर्ति प्राप्त होती रहे। शुभमस्तु! मङ्गलमस्तु!!"

कुछ रुक कर स्वामी जी पुनः बोले "देखो! कल कैण्ट स्टेशन पर सबेरे ६ बजे दिन में आ जाना। वहीं बलभद्र जी (स्वामी जी के शिष्य) भी आकर मिलेंगे। तुम दोनों को कुछ कार्य अभी सौंपना है! ठीक है?"

मैंने कहा—"जैसी आज्ञा!"

निर्दिष्ट समय पर मैं रेलवे प्लेट-फार्म पर पहुँच गया। बलभद्र जी बम्बई का टिकट कटा कर ले आए। स्वामी जी अपनी दो झोलियों के साथ डिब्बे में चढ़ गए। हम दोनों भी पीछे से डिब्बे में घुस गए।

स्वामी जी अपने गले की एक माला मुझे पहना कर बोले—"पुष्कर जी! तुमने बड़ी श्रद्धा-नियम से प्रायः २५ वर्षों तक निःस्वार्थ-भाव से संस्था (स्वामी जी द्वारा स्थापित संस्था—**'विश्व-शान्ति-सेवा-संघ'**) की सेवा की है। आज मैं तुमको सेवा-मुक्त करता हूँ। धन्यवाद और शुभाशीर्वाद।"

फिर बलभद्र जी को भी मेरी भाँति माला पहना कर बोले—"बलभद्र जी! तुम मेरे अनन्य शिष्य प्रमाणित हो चुके हो। तुमसे मुझे बड़ी आशा है। अतएव आज मैं तुमको 'विश्व-शान्ति-सेवा-सङ्घ' का अध्यक्ष-सञ्चालक मनोनीत करता हूँ। इस भार को सँभाल कर बड़े-से-बड़े बनो। मैं तुम्हें कुटी की ताली-चाभी देता हूँ। तुम आज वहाँ जाकर वहाँ का सभी सामान ठाकुर जी सहित अपने घर ले जाना और कोठरी को साफ-सुथरी कर देना। मैं जननी-जन्म-भूमि के दर्शन कर आऊँगा, तो ३-४ दिन तक इसी साधना-स्थल पर विश्राम करूँगा।"

इतने में गार्ड ने सीटी दी—गाड़ी से हम लोग उतर पड़े—वह छक-छक करती हुई आगे बढ़ी। हम लोग बोल उठे—"स्वामी जी की जय!"

बलभद्र जी रिक्शा पकड़ कर ठठेरी बाजार के नुक्कड़ पर उतर गए और मैं अपने रिक्शे से ज्ञान-वापी के पास पहुँच कर उतरा। एक सप्ताह के भीतर ही स्वामी जी पुनः काशी आए। मुझसे लोगों ने कहा कि—'भारत मङ्गल बाबा' (स्वामी जी का दूसरा प्रचलित नाम) काशी में आ गए हैं, लेकिन मैं स्वामी जी के निर्देशानुसार कुटिया पर नहीं गया। ठीक समय पर स्वामी जी ने अपना संस्कार कराया। इसका भी पता मुझे लगा, किन्तु मैं किसी से कहीं कुछ पूछने नहीं गया।

इस प्रकार मैं दिवङ्गत श्रद्धेय श्री गुरुनाथ जी के पुण्य स्मरण के साथ अपना वक्तव्य यहीं समाप्त करता हूँ। अपने जीवन-काल में आपने मुझे बहुत कुछ प्रदान किया। आपके हाथ के बनाए हुए कई नयनाभिराम चित्र, लिखे पत्र, आपके शालिगराम, आपकी पूजी हुई राधा-बाल-गोविन्द की पीतल की दो सुन्दर मूर्त्तियाँ आज भी मेरे निजी मन्दिर की शोभा बढ़ा रही हैं।

१४ स्वामी श्री ज्ञानानन्द जी सरस्वती (श्री भारत धर्म महा-मण्डल के संस्थापक)

उक्त स्वामी जी का पूर्व नाम जो भी रहा हो, पर काशी में लोग आपको श्री ज्ञानानन्द जी के नाम से ही जानते-मानते थे। काशी के सिद्ध सन्तों में आपकी गणना थी। आप बङ्गाली ब्राह्मण थे। आपके माता-पिता परम आस्तिक एवं सनातन धर्म के अनुयायी थे।

स्वामी जी बाल्यावस्था से गौराङ्ग महा-प्रभु और रामकृष्ण परमहंस के भक्त थे। इसीलिए युवावस्था में वैराग्य की भावना से भावित होकर काशी चले आए। यहाँ के सन्तों के सत्सङ्ग में रहने से आपने संन्यासाश्रम की दीक्षा ले ली तथा दण्ड-कमण्डलु-धारी बन गए। पहले आप संन्यासियों के साथ जाकर भिक्षा ग्रहण करते और 'लहुरावीर' चौराहे के पास एक ऊबड़-खाबड़ स्थान पर शयन करते थे। फिर वहीं भक्त-प्रेमियों द्वारा एक कुटिया बना दी गई।

स्वामी जी को बँगला, बङ्गाली हिन्दी और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था। उपनिषदों एवं श्रीमद् भागवद्-गीता पर आप सुन्दर प्रवचन देते थे। आगन्तुकों को किसी-न-किसी विषय पर धर्मोपदेश भी देते थे। जब आपकी ख्याति बढ़ी, तब आपने अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए एक संस्था—**'श्री भारत-धर्म-महा-मण्डल'** की स्थापना करने का निश्चय किया।

स्वामी जी के सत्प्रयत्नों से उक्त संस्था की धूम-धाम से स्थापना हुई। इस संस्था के उद्घाटन में महामना पं० मदनमोहन मालवीय, श्री प्रभुनारायण सिंह (काशी-नरेश), महाराजधिराज श्री रमेश्वर सिंह (दरभङ्गा-नरेश), राजा सर श्री माधवलाल आदि जैसे गण्यमान्य महा-पुरुष पधारे तथा संस्था के संरक्षक, सहायक, स्थायी सदस्य बन गए। कुछ समय बाद संस्था हेतु सुविधा-जनक भवन बन जाने पर, इसके भीतर कई महत्त्व-पूर्ण विभाग बन गए और सुयोग्य विद्वान् पण्डितों को उनमें नियुक्त किया

गया। इस संस्था के समकक्ष काशी ही क्या, समस्त भारतवर्ष में उस समय कोई दूसरी धार्मिक संस्था न थी।

स्वामी जी केवल विद्वान् दण्डी संन्यासी ही नहीं थे, प्रत्युत त्यागी, तपस्वी, योगी, देश-कालज्ञ और सिद्ध सन्त थे। आपने काशी में अभूत-पूर्व धार्मिक जागृति उत्पन्न की। पुराने पण्डितों में नई भावना काम करने लगी। दश-नामी संन्यासियों में जन-सेवा की नई धारा प्रवाहित हो गई।

आपके प्रभाव से बङ्गाल की विधवाएँ अपनी सम्पत्ति-सहित काशी आकर, आपसे दीक्षा लेकर एवं गेरुवे वस्त्र पहनकर संस्था में रहने लगीं। इनमें एक श्री विद्या देवी थीं, जो परम विदुषी थीं। आपको स्वामी जी ने महा-मण्डल के सभी विभागों का कार्य-भार सौंप दिया था। आज भी यह संस्था तपस्वी स्वामी जी और विदुषी श्री विद्या देवी के बाद येन-केन प्रकारेण चल रही है।

१५ 'धर्म-सम्राट्' श्री करपात्री जी भागवताचार्य

विश्व-विश्रुत स्वामी श्री करपात्री जी एक अलौकिक महात्मा एवं सिद्ध सन्त थे। अपने व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से आप जनता के लिए प्रातः-स्मरणीय 'धर्म-सम्राट्' बन गए।

कहते हैं कि आप गोरखपुर के किसी ग्राम के निवासी थे। माता-पिता ने आपका नाम 'हरिहरानन्द' रक्खा था। ब्राह्मण होने के कारण सर्व-प्रथम गुरु-गृह में संस्कृत का अध्ययन करने लगे। आपमें विलक्षण प्रतिभा थी। जो पढ़ाया जाता, उसे शीघ्र ही कण्ठाग्र कर सुना दिया करते और थोड़े ही दिनों में अनेक विषयों के ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन कर लिया। तब गुरु महाराज ने कहा कि—"अब तुम विद्या की नगरी बाबा विश्वनाथ की पुरी 'काशी' में जाकर अध्ययन करो।" उनकी आज्ञा पाकर आप काशी-पुरी में आकर अच्छे विद्वानों से अध्ययन करने लगे।

श्रीमद्-भागवत का निरन्तर पाठ करने से आपके हृदय में वैराग्य-भाव का उदय हो गया। आपने शिखा-सूत्र का परित्याग करके दण्ड-कमण्डलु धारण कर लिया। संन्यास की दीक्षा लेकर, काशी में किसी-न-किसी मन्दिर या घाट पर आप निरन्तर भागवती कथा का विशद प्रवचन करने लगे।

कौपीन धारण कर आप ऊपर से गेरुवा वस्त्र लपेट लेते थे। आपके पास दण्ड-कमण्डलु पड़ा रहता। कुशा के आसन या मृग-चर्म पर बैठते। जल में विभूति-भस्म फेंट कर अपने सुन्दर शरीर पर दोनों हाथों की तीन अंगुलियों से शिर से पैर तक त्रिपुण्ड लगाते।

आपकी सबसे बड़ी तपस्या यह थी कि किसी बर्त्तन या पत्तल में आप कुछ भी नहीं खाते थे। बनी-बनाई, पक्की-कच्ची रसोई दोनों हाथों की अञ्जलि में लेकर ही सदा भोजन करते थे और अञ्जलि से ही २-३ बार पानी पीकर मुख धो लेते थे। फलादि भी मिलते, किन्तु उन्हें स्वल्प मात्रा में ही खाते, अधिकतर प्रसाद रूप में बाँट देते थे।

स्वामी जी का कथा-वार्त्ता-उपदेश या धार्मिक प्रवचन अपने ढंग का निराला होता था। बड़ी ही प्राञ्जल खड़ी बोली में प्रवचन करते थे। आपकी भाषा सन्धि-समास-युक्त आलङ्कारिक होने पर भी माधुर्य, ओज एवं प्रसाद - गुणों से मण्डित काव्य-मयी होती थी, जो सर्व-साधारण जनता की समझ में भले प्रकार आ जाती थी।

स्वामी जी का प्रवचन धारावाहिक होता था। विषय-प्रतिपादन की शैली भी निगमागम-प्रमाणों से रचित होती थी। प्रवचन के अन्त में सिंहावलोकन कर मूल-भूत भावों को स्पष्ट करने की कला में आप अत्यन्त निपुण थे।

आपकी कथा-वार्त्ता सुनने के लिए मैं सदैव लालायित रहता था। जहाँ भी वह होती, वहाँ मैं समय पर पहुँच जाता। आरती को नमन कर आपके पाद-पङ्कजों का स्पर्श कर प्रसाद लेकर ही घर आता। एक बार मैंने स्वामी जी से कहा—"महाराज! आप तो परम भागवत और भागवताचार्य तो हैं ही, किन्तु मेरे मत से आप शुकदेव-मुनि के अवतार हैं।"

इस पर आप बोले—"इस जन्म में तो नहीं, कदाचित् किसी और जन्म में यह सम्भव हो सके।"

जब करपात्री जी की ख्याति बढ़ी, तब भक्त-प्रेमी जन आपको कलकत्ता, मुम्बई, गुजरात एवं दिल्ली ले जाकर प्रवचन करवाने लगे। इसका फल यह हुआ कि आप जहाँ प्रवचन करते, वहाँ आवश्यक संस्थान, आश्रम, विद्यालय, पुस्तकालय आदि स्थापित करने का प्रबन्ध कर 'सनातन धर्म' की जड़ को पुनः पुञ्जीभूत तथा पल्लवित कर देते। इसके अतिरिक्त देश-भ्रमण करने से आपको जनता की गति-प्रगति का यथेष्ट बोध हुआ, जिसके फल-स्वरूप हिन्दुओं को एक सूत्र में आबद्ध करने की आवश्यकता की प्रतीति भी आपको हो गई।

देश-भ्रमण से स्वामी जी को यह भी अनुभव हो गया कि यज्ञ-यागों के आयोजन से जन-समाज का सुन्दर सङ्गठन हो सकता है और इसमें सनातन-धर्मी और आर्य-समाजी—सभी सम्मिलित होकर काम करेंगे। दूसरे शब्दों में **'संघे शक्तिः कलौ युगे'**—कलि-काल में संघ-शक्ति से काम लेने से सफलता प्राप्त होती है—इस उक्ति पर स्वामी जी को पूर्ण विश्वास हो गया। फलतः आपके द्वारा काशी में तथा अन्यत्र कई संस्थाओं की स्थापना हुई। काशी में 'दुर्गा-कुण्ड' के पास आपने 'धर्म-सङ्घ' की स्थापना की। बहुत बड़े भू-खण्ड पर भवन बनवाया, जिसमें काशी-वास करनेवाले वानप्रस्थी और सु-योग्य संन्यासियों के ठहरने के लिए कक्ष बनवाए गए। उन कक्षों में महा-महोपाध्याय पं० गिरिधर जी शर्मा चतुर्वेदी भी अन्त समय तक रहे। वहीं करपात्री जी के द्वारा अभिषिक्त जगद्-गुरु शङ्कराचार्य स्वामी महेश्वरानन्द जी सरस्वती रहे। उनके पश्चात् स्वामी शङ्करानन्द जी ब्रह्मचारी अभिषिक्त हुए।

'नारद घाट' पर 'गङ्गा-तरङ्ग-सत्सङ्ग-भवन' में स्वयं स्वामी जी और आपके द्वारा प्रवर्तित 'सन्मार्ग' पत्र के सम्पादक पण्डित गङ्गाशङ्कर जी मिश्र भी कुछ समय तक रहे। 'सिगरा रोड' पर आपने एक 'वृन्दावन-धाम' भी बनवाकर परमार्थियों को सौंप दिया। सुदूर दिल्ली में यमुना जी के किनारे 'निगम बोध घाट' पर 'आचार्य-कुल आश्रम' का निर्माण करवाया, जहाँ वेद-शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी। वहाँ के आचार्य-कुलपति के पद पर श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी को मनोनीत किया गया, जिन्हें आपने 'ज्ञान-वापी' में जगद्गुरु शङ्कराचार्य का पद प्रदान किया था। वे बड़े ही निःस्पृह महात्मा थे।

अन्तिम समय में स्वामी करपात्री जी ने सह-वासियों को बता दिया था कि "अब मुझे संसार त्यागना है। आप लोग मेरे निष्प्राण शरीर को सामान्य गैरिक वस्त्र में लपेट कर एक सन्दूक में रखकर हरिचन्द्र घाट श्मशान के सामने श्रीगङ्गा जी में प्रवाहित कर देना। बस! मेरा समस्त लोगों को यही एक सन्देश है कि—"**धर्म की जय होगी, तो अधर्म का नाश होगा। अधर्म का नाश होने से प्राणियों में सद्-भावना उत्पन्न होगी और सद्-भावना से विश्व का निश्चित रूप से कल्याण होगा।** हर-हर महादेव! हरि-ॐ-तत्सत्!"

१६ पण्डित दामोदर जी दर्शनाचार्य 'तन्त्र-भास्कर'

पं० दामोदर जी गृहस्थ होने पर भी सिद्ध सन्त थे। आपका पहनावा सदैव स्वच्छ और साधारण रहता था। आप काशी के विशिष्ट विद्वान्, दर्शन-शास्त्राचार्य एवं महा-महोपाध्याय थे। आप व्याख्यान-वाचस्पति कहे जाते थे। इसके अतिरिक्त गम्भीर चिन्तक, तन्त्र-भास्कर, स्वरोदय-विद्या के साधक एवं बड़े तेजस्वी व्याख्यान-दाता थे। आपसे शास्त्रार्थ करने में पण्डित लोग भी भयभीत हो जाते थे। आप स्वल्प-भाषी, उदार प्रेमी, गुण-ग्राही और कर्म-निष्ठ विद्वान् थे। आपने कई ग्रन्थों की टीकायें लिखी हैं। आप विद्यार्थियों को निःशुल्क दर्शन-शास्त्र पढ़ाते थे।

आपकी इष्ट-देवता '**श्री चण्डी**' देवी थीं। वेद-वेदान्त के आप अथाह सागर थे। ललाट-रेखा देखकर आप फलादेश कहते थे। आपके दो प्रकाण्ड शिष्य श्री राजनारायण शास्त्री 'शास्त्रार्थ-महारथी' एवं पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्री थे।

१७ स्वामी श्री विद्यानन्द जी महाराज, गीता-व्यास

महा-मण्डलेश्वर श्री विद्यानन्द जी महाराज काशी के सिद्ध सन्त कहे जाते थे। आप सरयू-पारीण ब्राह्मण थे। संस्कृत और हिन्दी के धुरन्धर विद्वान्, तत्त्व-दर्शी, परोपकारी, सनातन धर्म के प्रचार में निपुण थे।

स्वामी जी के प्रभाव व प्रयत्न से काशी की नई सड़क के पास '**श्री गीता-मन्दिर**' नामक एक विशाल मन्दिर की स्थापना हुई है। इस मन्दिर के भीतर व्याख्यान-कथा-कीर्त्तन के लिए विशाल हाल और अतिथि-गृह बनाए गए हैं। काशी के अतिरिक्त भारत के विभिन्न स्थानों पर १७ विशाल '**गीता-मन्दिर**' बनाए गए हैं।

१८ अखण्ड श्री विभूषित श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज

उक्त स्वामी जी महाराज ने अपने प्रगाढ़ मनोबल, अदम्य उद्योग, निरन्तर आदर्श व्यक्तित्व एवं उपयुक्त कृतित्व से समस्त भारत में अपनी कीर्त्ति-कौमुदी दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ाई। आपका घर का नाम श्री शान्तनु-प्रिय द्विवेदी था। आपने व्याकरण, काव्य-कोषादि संस्कृत-साहित्य के ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन, मनन व चिन्तन किया था। आप 'राष्ट्र-भाषा' हिन्दी के भी बड़े प्रेमी और उन्नायक थे।

वेद-पुराण-शास्त्रों के परिशीलन, सतत चिन्तन, अन्वेषण एवं अनुवाद-कार्य में लीन होने के कारण आपको आत्म-ज्ञान का अर्जन हो गया। आपके हृदय में वैराग्य-भाव जाग उठा और अपने सुपुत्र पं० विश्वम्भरनाथ जी (उर्फ बाबा) को अपनी निजी सम्पत्ति सौंप कर प्रसन्न-चित्त 'तीर्थ-यात्रा' को निकल पड़े।

आप काशी, प्रयाग, विन्ध्याचल, अयोध्या, नैमिषारण्य, बिठूर, मथुरा-वृन्दावन, हरिद्वार, बदरी-केदारनाथ, आबू, गिरनार, वैष्णो देवी, द्वारका आदि-आदि मुख्य स्थानों पर गए और देव-दर्शनों से तृप्त हो गए। 'तीर्थ-यात्रा' में आपने संन्यास-ग्रहण कर लिया।

संन्यास-ग्रहण करने के बाद आप पुनः काशी आए और काशी में 'ज्ञान-वापी' के निकट 'संन्यासी-संस्कृत-महाविद्यालय' के पास 'आनन्द-कानन' नाम से एक छापाखाना खुलवा दिया, जहाँ से 'चिन्ता-मणि' नामक पत्र और स्वामी जी द्वारा लिखित-अनुवादित पुस्तकें छपने लगीं।

१९ योगि-राज श्री सत्याचरण जी लाहिड़ी

श्री सत्याचरण लाहिड़ी जी काशी के एक सिद्ध सन्त थे। आपके पिता-पितामह योगि-राज कहे जाते थे। आप बङ्गाल के निवासी थे, तीन पुश्तों से काशी-वासी बन गए थे।

काशी में 'श्री चौसट्ठी देवी' का सु-प्रसिद्ध मन्दिर है। इस मन्दिर की गली में प्रविष्ट होते ही दाहिनी ओर 'सत्य-धाम' आश्रम है। इसी आश्रम में लाहिड़ी-परिवार निवास करता था। लाहिड़ी-परिवार की तीन पीढ़ियों के लोग गृहस्थ और योग-साधना में तत्पर रहे।

'सत्य-धाम' में एक विशाल मन्दिर है, जिसमें कई छोटे-बड़े दर्शनीय शिव-लिङ्ग स्थापित हैं, जिनकी नित्य पूजा-आरती होती है।

लाहिड़ी जी के अधिकांश शिष्य बङ्गाली स्त्री-पुरुष थे। इन शिष्यों से लाहिड़ी जी की साधना के विषय में यह ज्ञान होता था कि लाहिड़ी जी अर्द्ध-रात्रि में अपनी साधना किया करते थे। साधना-काल में आपका आसन घण्टे भर तक पृथ्वी से एक गज ऊपर उठा रहता था और 'जप' समाप्त होने पर भूमि पर आ जाता था। लाहिड़ी जी के पश्चात् आपके शिष्य 'सत्य-धाम' को चला रहे हैं। वहाँ उत्सव, पर्व, सत्सङ्ग आदि आज भी होते रहते हैं।

२० श्री केशव मूर्ति जी कापालिक

श्री केशव मूर्ति जी मद्रास के रहनेवाले दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। आप श्याम-वर्ण के, दुबले-पतले और ठिगने आकार के थे। आपकी दोनों आँखें सदैव लाल रहती थीं। मद्रास विश्व-विद्यालय के आप स्नातक थे। अंग्रेजी बोलने का आपको अच्छा अभ्यास था। ऊबड़-खाबड़ हिन्दी भी बोल लेते थे।

एक लँगोटी पहन कर ऊपर मदरासी मोटी लुंगी लगाते और झोली में एक नर-मुण्ड रखते थे। एक काला खप्पर हाथ में रखते थे, जिसमें प्रायः भोजन किया करते व पानी पीते। किसी से कुछ माँगते नहीं थे। कोई जो कुछ देता, उसी से पेट भरते। काशी में आपको दो स्थान प्रिय थे—एक तो 'मणि-कर्णिका' का श्मशान, दूसरा 'चित्त-रञ्जन पार्क' में घने वृक्षों के नीचेवाला ऊँचा चबूतरा।

२१ स्वामी श्री विशुद्धानन्द जी सरस्वती

आप कुलीन ब्राह्मण-परिवार के थे। आपके माता-पिता सनातन-धर्मानुयायी थे, जिन्होंने आपको वेद-वेदाङ्ग की यथेष्ट शिक्षा दी। नदिया, शान्तिपुर और नैमिषारण्य में १२-१३ वर्ष तक आपने शिक्षा प्राप्त की। काशी आने पर आपकी वाचा-शक्ति और भी चमत्कारिणी हो उठी। आप प्रकाण्ड विद्वानों से शास्त्रार्थ करने लगे।

काशी में स्वामी जी के अनेक साधु और विद्वान् शिष्य हुए, जिनमें पं० मनीषनाथ जी द्विवेदी स्वामी जगदानन्द जी सरस्वती प्रमुख हैं। स्वामी जी के ब्रह्मीभूत होने पर आपके शिष्यों द्वारा 'श्री विशुद्धानन्द ब्रह्मचर्याश्रम' खोला गया, जहाँ वटुकों के लिए अन्न-वस्त्र और आवास की व्यवस्था की गई।

'श्री विशुद्धानन्द ब्रह्मचर्याश्रम' में एक दो वर्ष की बालिका 'मुक्ति देवी' थी। यह बालिका बड़ी कुशाग्र बुद्धि की थी और इसे 'गीता' के १८ अध्याय कण्ठस्थ थे। कहीं से भी पूछने पर वह आगे के श्लोक सुनाती थी। अतः इस आश्रम के द्वारा प्राचीन 'गुरुकुल-परम्परा' की स्थापना हुई है।

२२ अखण्ड श्री नंगे बाबा जी अवधूत

ये बड़े हृष्ट-पुष्ट, गौर-वर्ण और दर्शनीय थे। विरक्त होकर काशी आए और किसी अवधूत योगी से संन्यास की दीक्षा ले ली। शिखा-मूल ही नहीं, लँगोट भी त्याग कर नङ्गे बाबा बन गए! सर्वाङ्ग

में विभूति-भस्म लगाते, दाएँ हाथ में चमकता त्रिशूल और बाएँ में कमण्डलु तथा कुशासन रखते थे। अस्सी नाला से पहले गङ्गा-घाट पर ये आसन लगाया करते। वहाँ के घाट-पुरोहित इनके ऊपर ताड़ का छाता तान देते थे। नगला पर काशी-वास करनेवाले श्री शशिशेखरेश्वर शर्मा या अस्सीघाट पर स्थित सरबाजपुर के बाबू की कोठी से इनके लिए पूरी - सब्जी आती थी क्योंकि ब्राह्मण के सिवा अन्य किसी के घर का कच्चा भोजन नहीं करते थे। पक्के सनातनी विचारवाले थे।

बाबा जी किसी प्रकार की नशीली वस्तु कदापि व्यवहार में नहीं लाते थे। कोई भङ्ग की गोली देता, तो शिर से लगाकर गङ्गा जी में फेंक देते। कहते—"मुझ अवधूत को पवित्र पदार्थ ही ठीक हैं।" उनके पास जो भक्त आकर बैठते, उनसे बड़े प्रेम से कहते और कहलवाते—"शिव-शिव शम्भो, शम्भो शम्भो शम्भो।" जाते समय धूनी की भभूत लगा देते। दीन जनों की बातें सुनकर रोने लगते और जिसको अपना त्रिशूल छुला देते, उसका मनोरथ अवश्य पूर्ण हो जाता।

२३ श्री शालिग्राम जी (पाखण्डी बाबा)

पाखण्डी बाबा बड़े ही निर्भीक और स्पष्ट-वक्ता थे। आपका कहना था कि "जब सारी दुनियाँ पाखण्ड करने में पागल रहती है, तो मुझे ही क्यों कहा जाय?" आपका वास्तविक नाम शालिग्राम था, किन्तु आप स्वयं भी अपने को 'पाखण्डी' ही कहते थे और बड़े गर्व से घोषित करते थे कि—"मैं पाखण्ड के फण्ड के बल पर ही आजादी से जी रहा हूँ। मैं किसी के आश्रित नहीं हूँ।"

जाति के आप कुम्हार थे। आपकी बुद्धि तीव्र थी। आपने कुम्हार-वृत्ति को छोड़ दिया और काशी आ गए। काशी में पहले-पहल आप 'केदार घाट' पर आए और श्री केदारनाथ जी के मन्दिर में जाकर वहीं प्रसाद पाने लगे। वहाँ सन्तों की कथा-वार्त्ता चलती, जिसे आप सुना करते थे। कथा-वार्त्ता से आपको संसार के दुःखी प्राणियों की सेवा करने की प्रेरणा मिली। किसी साधु से मन्त्र-दीक्षा भी ले ली और निश्चिन्त होकर काशी की गलियों में घूमने-फिरने लगे। निर्धारित समय पर, 'श्री केदारनाथ मन्दिर' में झाड़ू-बहारू करते और भोजन पाते।

धीरे-धीरे आपमें ऐसी विरक्ति हुई कि आपने विचित्र बानक बना लिया। मन्दिरों की उतार कर फेंकी हुई मालाओं को शिर पर एक मुकुट के रूप में धारण कर लिया। गले में, हाथों में मालाएँ लपेट लेते। टाट के चिथड़े पहनते तथा एक हाथ में ताड़ का बड़ा पंखा और एक में नारियल का दमपुलाट झाड़ू रखते। जहाँ-तहाँ जाते, गलियों का कूड़ा-कर्कट बटोर कर इकट्ठा कर देते तथा पक्षियों को पंखा डुलाते। इससे पशु-पक्षी आपसे बहुत प्रसन्न रहते और आपके पास मँडराया करते।

अन्तिम समय में बाबा रिक्शा चलाने लगे थे। रिक्शे पर रोगियों को बैठाकर अस्पताल में भर्त्ती कराते, राह में मरे हुए को मरघट पहुँचाते, गरीब-बूढ़ों को रिक्शे पर बैठा कर उनके घर तक ले जाते। यही नहीं, हेडमास्टर या प्रिंसिपल से मिलकर दीन विद्यार्थियों की फीस माफ करा देते। गरीबों के मुकद्दमों में कोर्ट में जाकर बेगुनाह होने पर रिहा करने की मुंसिफों से सिफारिश करते थे। अनाथ बच्चों तथा बेवारिस स्त्रियों को अनाथालय और विधवाश्रम में दाखिल करा देते।

काफी वृद्ध होते हुए भी आप जनता-जनार्दन की सेवा में लगे ही रहे। दमा-खाँसी के आप मरीज भी बन गए थे। जब रिक्शा चलाना असम्भव हो गया, तब अपने रिक्शे को एक गरीब को कमाने-खाने को दे दिया। अपने पाखण्ड-फण्ड के बक्से को भी एक साधु को सौंप दिया और किसी प्रकार

कुछ खाकर गङ्गा-जल पीकर चुप-चाप बैठ कर दमा-खाँसी को दबाने में व्यस्त रहते। चाय पीने के आप बड़े प्रेमी थे। अतः एक-दो कप चाय मँगाकर अवश्य पीते।

अन्तिम दिनों में, आपने चाय भी छोड़ दी। कहते कि—'भग, साली! अब तुझे भी छोड़ देता हूँ। अब तो देह छोड़ने की बारी है।' जेठ सुदी दशहरा से आपने पानी लेना भी बन्द कर दिया। दूसरे दिन निर्जला एकादशी पड़ी। उसी रात किसी समय धरा-धाम से उठ गए।

मेरे मत से श्री शालिग्राम जी अपने ढङ्ग के ऐसे सेवा-भावी सिद्ध सन्त और विचित्र व्यक्ति थे कि पेट को भी पाखण्ड-फण्ड मानते थे और कहते थे कि इसी को भरने के लिए सभी नर-नारी सब बुरा-भला काम-काज करते हैं। आपके बाद वैसा कोई महा-पुरुष मुझे काशी में नहीं दिखाई दिया।

२४ बाबा श्री खराबदास जी 'मन-मौजी'

बाबा खराबदास जी भी एक विचित्र व्यक्ति थे। आप सरवरिया ब्राह्मण थे। परिवार के लोग चन्दौसी के किसी गाँव में रहते थे। माता-पिता छुटपन में ही दिवङ्गत हो गए थे। चाची और चाचा ने आपको मार-पीट कर घर से निकाल दिया। अपमानित होकर आप काशी आए और भीख माँगकर समय काटने लगे। जब आप १५ वर्ष के थे, तब किसी स्त्री ने आपको भीख माँगने के कारण बहुत फटकारा।

मन-मौजी बाबा को बड़ी ग्लानि हुई। उसी दिन गङ्गा पार कर रामनगर परेड के पास आए। पटरी के पास ३-४ ताड़ के पेड़ थे। वहीं पर अपना डेरा डाल दिया। आस-पास के गाँव के लोग उन्हें जो देते, बस, उसी से अपना निर्वाह करते। **'राम कहो रे भाई! तेरी बिगरी बात बन जाई'**—की धुन ने आपकी ख्याति दूर-दूर तक फैला दी। लोग नाना प्रकार के दुःख-रोगादि छुड़ाने की भीड़ लगाने लगे। जब भीड़ ज्यादा होने लगी, तब एक दिन बाबा ने सभी भक्त प्रेमियों से कहा कि "आप लोग मुझे छुट्टी दे दें—मैं हरिद्वार में कुम्भ पर जा रहा हूँ।"

सबसे 'जय राम जी' कहकर चले गए, फिर लौटकर नहीं आए। आपकी मड़ई उजड़-फुजड़ गई।

२५ श्री कुत्ता बाबा जी 'भूत-भैरव'

श्री कुत्ता बाबा जी बुन्देलखण्ड के किसी गाँव के एक चन्देल ठाकुर थे। गाँव के 'भूत-भैरो बाबा' की विनती से आपका जन्म हुआ। अतः सब लोग आपको 'भूत-भैरो' नाम से पुकारने लगे। घूमते-घूमते काशी आए और लोहरिया के पास 'काल-भैरव' मन्दिर के पीछे पटरी पर रहते। जो कुछ मन्दिर से पुजारी लोग देते, उससे कुछ खाते और शेष कुत्तों को खिलाते। ८-१० कुत्ते आपके पास बैठे रहते।

कुछ लोगों को उक्त बात भाई नहीं। तब आप 'रामनगर' चले आए और किले के दक्षिण कोनिया घाट-गोलाघाट-घुरहा नाले की एक गुफा में पहुँच कर टिक गए। गुफा के पास नीम के वृक्ष थे। गुफा के नीचे गङ्गा जी लहर मारती थीं। बाबा जी को यहाँ काफी सुभीता था।

प्रायः रविवार-मङ्गलवार को आप नगर में रात ११-१२ बजे फेरी में निकलते थे। आपके पीछे १०-१५ कुत्ते भी चलते। ये कुत्ते जरा भी भूँकते-भाँकते न थे, किन्तु गलियों के कुत्ते उन्हें देखकर दूर से ही भों-भों किया करते। कोई कुछ खाने की वस्तु देता, तो बाबा अपनी झोली में भर लेते और अपने पालतू कुत्तों को खाते-पिलाते अपनी गुफा पर आ जाते।

एक बार बाबा ने कहा कि—"मेरे प्रेमी भक्तों ! मैं नगर भर के लोगों को अखण्ड भोजन-भण्डारा देना चाहता हूँ। एक डुग्गी फिरा दो और हलवाइयों से कह दो कि लड्डू, पूरी-सब्जी बनाकर ले आएँ और सबको जिमावें। सबेरे से आधी रात तक काम चले, फिर बन्द कर दिया जाय और हलवाई लोग अपना दाम मुझसे चुका लें।"

ऐसा ही हुआ। आधी रात में भण्डारा समाप्त कर सब बाबा के पास आए। हिसाब चुकाने के लिए बाबा अपनी झोली में से रुपए चुकाने लगे। जब सबने कहा कि "बाबा जी, अब किसी का एक पैसा नहीं," तब बाबा ने झोली झाड़ दी, उसमें फिर एक पैसा भी नहीं रहा।

बाबा ने कहा—"गुफा में जाकर बाकी सामग्री ले आओ। हमारे भूखे कुत्ते और हम भी पावें।" भीतर जाने पर सभी भोज्य पदार्थ मिले। कुत्तों और बाबा के खा चुकने पर एक चूरा भी नहीं बचा। इस घटना से नगर के सभी लोग आपको एक सिद्ध सन्त मानने लगे।

बाबा जी बहुत बड़े हठ-योगी भी रहे। कभी कोई दवा नहीं खाते थे। कानों और नाक के छेदों में सदा रुई ठूँसे रहते थे। धीरे-धीरे नाक से बोला करते थे। आपकी भाषा बैसवाड़ी थी।

एक बार रामनगर में जान-मारू ज्वर फैल गया। राजा-प्रजा सभी ने घबराकर आपकी शरण में निवेदन किया। बाबा ने एक भारी कुण्ड खुदवाया और कहा—"हर तरह की लकड़ी, हवन-सामग्री जुटाओ। मैं 'भूत-भैरो यज्ञ' करूँगा। यज्ञ के धुएँ से नगर भर में शान्ति हो जाएगी।"

बाबा ने कुण्ड में एक गोइँठा फेंक दिया। आग जल उठी। तीन दिनों तक कुण्ड में अग्नि-ज्वाला उठती रही। सब लोग दर्शन करने आए, किन्तु काशी के महाराज नहीं आए। इससे बाबा जी को बड़ा दुःख हुआ, बोले—"जहाँ राज-धर्म का पालन न हो, वहाँ किसी साधु को न रहना चाहिए।" फिर आप चुप हो गए। उसी रात खिन्न होकर आप न जाने कहाँ चले गए। सबेरे आपके कुत्ते भी न जाने कहाँ अन्तर्ध्यान हो गए।

परिशिष्ट

[इस लेख-माला में मैंने २५ व्यक्तियों को स्थान दिया है। भूत-भावन भोले बाबा की नगरी 'काशी' में इन २५ के अतिरिक्त कितने ही सिद्ध सन्त एवं विचित्र व्यक्ति हुए हैं एवं होते भी रहेंगे, जिनकी पूर्ण जानकारी किसी को भी सम्भव नहीं है। अतः मुझसे जो भूलें और त्रुटियाँ हुई होंगी, मैं उनके सम्बन्ध में क्षमा-याचना करता हूँ।

इस परिशिष्ट में भी कुछ लोगों के नामों का उल्लेख करना चाहता हूँ, जिनके रूपों को देखा है तथा कार्यों को भी समझता रहा हूँ। वे इस प्रकार हैं—**श्री खिचड़िहा बाबा, छन्नू व्यास 'बेमुलक', ब्रह्मदत्त शर्मा 'जिज्ञासु', फेंकू साव 'अमीर-उमरा', 'राम-नाम सत' बकनेवाला, 'दुखी जानकीदास 'खरा-खोटा', सूर्यबली सिंह 'नगर-नारद', उजबक सरदार 'ठहाका', जगन्नाथ 'शङ्ख-ध्वनि', हरनाथ तिवारी 'आलू पण्डित', सीतललाल 'शुद्धिवाला'** आदि। सभी विचित्रता के कोष थे। दिन-रात अपनी करनी करने में सुख पाते रहे।

कुछ ऐसे नाम छोड़ भी दिए गए हैं, जो इस तालिका के योग्य न थे। जिन्हें जनता घृणा की दृष्टि से देखती थी। अलमिति विस्तरम्। शुभमस्तु !!]

• • •

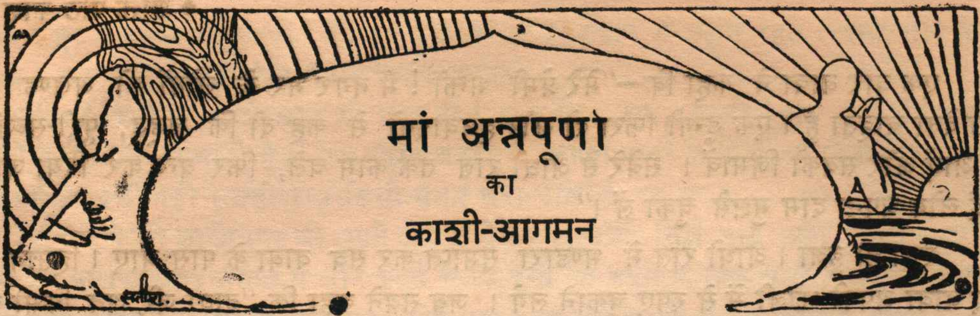

मां अन्नपूर्णा का काशी-आगमन

'विश्वनाथ' के दर्शन के बाद 'काशी' में आया यात्री 'अन्नपूर्णा' का दर्शन तो निश्चित रूप से करता है। 'अन्नपूर्णा' के 'काशी' आने की कथा धार्मिक पोथियों में लिखी गई है। उसी के आधार पर 'अन्नपूर्णा के काशी-आगमन' की यह कथा लिखी जा रही है।

महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन से जुए में हार कर वन-वास कर रहे थे। एक दिन भगवान् कृष्ण उनसे मिलने आए। कुशल-क्षेम के बाद वे बोले—"महाभाग ! अन्न-जल का स्वाद और गन्ध, पेट-भर भोजन और तृष्णा की तृप्ति आज वर्षों से भूल गया हूँ। अपना कष्ट तो सहन कर ही रहा हूँ, लेकिन ऐसे समय देखे नहीं जाते, जब प्राणियों को अन्न-जल का कष्ट होने लगता है।"

इस पर श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—"महाराज ! इस लोक की यही दशा है। ठीक आपके समान वन में वास करते समय श्री रामचन्द्र की भी यही दशा थी। लक्ष्मण जी भक्ष्य-असुविधा से खिन्न हो रहे थे और राम उन्हें समझा रहे थे। इसी बीच अगस्त्य जी वहाँ पहुँच गए। महर्षि के सम्मुख भी यही प्रश्न रखा गया।

"महर्षि ने उन लोगों से कहा कि बहुत पहले की बात है कि काशी-नगरी में देवदत्त और धनञ्जय नामक दो ब्राह्मण भाई थे। उनमें देवदत्त सुखी और धनी था तथा धनञ्जय दुखी और दरिद्र। दरिद्रता से जब उसका दुःख चरम सीमा पर पहुँचा, तो वह सोचने लगा कि 'मैंने ऐसा कौन सा कुकर्म किया, जिसका फल मुझे भुगतना पड़ रहा है। मैंने अपनी गर्भिणी पत्नी को कुछ कष्ट दिया नहीं। दरवाजे से कोई ब्राह्मण कभी विमुख होकर लौटा नहीं। मैंने किसी के दिए अन्न का, कुल-नारियों का अपमान नहीं किया। सुअन्न रहते बान्धवों को कुअन्न नहीं दिया। कभी माता-पिता को बुरा-भला नहीं कहा और न कभी श्राद्ध के दिन पितरों को भूखा रखा, फिर क्या कारण है कि अन्न-उपार्जन करने के सब उपाय रहने पर भी मैं सपरिवार भूखा मर रहा हूँ।'

"ऐसे ही सोचते-सोचते एक दिन मणि-कर्णिका घाट में स्नान कर उसने विश्वेश्वर का विधिवत् पूजन किया और 'रुद्र-सूक्त' का पाठ करता हुआ ज्ञान-मण्डल में कुशासन पर सो गया। सपने में उसे मालूम हुआ कि कोई जटा-धारी ब्राह्मण उससे भगवती अन्नपूर्णा के उत्तम व्रतों को करने के लिए कह रहा है और यह भी कहा कि 'उनकी कृपा से तुम्हारा सारा सङ्कट दूर हो जाएगा। पूर्व-जन्म में तुम राजकुमार शत्रुमर्दन के मित्र थे और जब राजकुमार शिकार खेलने गए थे, तो तुम भी साथ में गए थे। शिकार में सुअर का पीछा करते राजकुमार बहुत दूर बढ़ गए। तुम भी उनके साथ थे। तुम लोग प्यास से व्याकुल हो रहे थे कि वहाँ एक महात्मा पहुँच गए और तुम दोनों को आश्रम पर ले आए। महात्मा ने तुम दोनों को सांवा का सत्तू खाने को दिया। वह सत्तू पवित्र था। राजकुमार ने तो आदर

से खा लिया, पर तुमने स्वाद न होने से उस अन्न की निन्दा की और जमीन पर बिखेर दिया। राजकुमार ने जमीन पर गिरे अन्न का आदर किया। अन्नपूर्णा का आदर करने ही के फल-स्वरूप वह तुम्हारा बड़ा भाई ही देवदत्त है, जो सुख-सम्पन्न है।'

"इतने में उसकी नींद खुल गई। वह घूमता-घामता काम-रूप कामाक्षी देवी के मन्दिर में पहुँचा। उसने देवी के दर्शन किए। बाहर निकलने पर मन्दिर से कुछ फासिले पर उसे एक सुन्दर सरोवर दिखाई पड़ा, जिसके किनारे कुछ औरतें एक दिव्य देवी की पूजा-अर्चना कर रही थीं। पूछ-ताछ करने पर पता चला कि वे सब अन्न-पूर्णा-व्रतिनी हैं और ये महा-गौरी हैं, जिन्हें सृष्टि के समय आद्या-शक्ति, रक्षा के समय पालन-कर्त्री अन्नपूर्णा और प्रलय-काल में संहार-कर्त्री काल-रात्रि कहते हैं। मार्गशीर्ष में इनके व्रत और पूजन से सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त होती है।

"उसने सविधि व्रत किया। व्रत के प्रभाव से उसका सब दुःख दूर हो गया। मकान, नौकर-चाकर सब हो गए और उसने दूसरा विवाह भी कर लिया। मार्गशीर्ष आने पर उसने अपनी पहली पत्नी के घर जाकर व्रतारम्भ किया और बाहु में डोरा बाँधा। उसकी दूसरी पत्नी ने उस डोरे को देख लिया और टोटका समझ कर उसे नष्ट कर दिया। दूसरे दिन फिर दूसरा डोरा बाँधकर उसने व्रत की पूरी विधि की।

"व्रत के अनादर का फल दिखाई पड़ने लगा। धीरे-धीरे सब नष्ट हो गया। उसे फिर पहले-वाली बात याद आई और वह फिर कामाक्षा गया, लेकिन वहाँ कुछ भी न दिखाई पड़ा। वह बहुत दुखी हुआ और प्राण त्यागने के विचार से कुएँ में कूद पड़ा। नीचे जाते उसे किसी के हाथ का सहारा-सा मालूम हुआ और ऐसा मालूम हुआ कि किसी दिव्य स्थान में पहुँच गया है। उसी में वह घूमने लगा। कुछ आगे जाने पर अन्नपूर्णा और महेश्वर का मन्दिर मिला। परिचारिकायें चारों तरफ चमर, ताम्बूल और मालाएँ लिए हुए खड़ी थीं। द्वार पर ही वह रोक दिया गया।

"धनञ्जय प्रार्थना में लीन होकर जमीन पर गिर पड़ा। माता का कोमल हृदय पसीज गया। उन्होंने उसे उठाया और प्रसन्न होकर कहा कि 'तुम्हारी पूर्व-वत् दशा तभी होगी, जब तुम पूर्व-वत् व्रत करते रहोगे। तुम्हारे कल्याण के लिए मैं काशी चलूँगी और विश्वेश्वर मन्दिर की ओर मेरा मन्दिर बनवाना।' महेश्वर ने भी प्रसन्न होकर काशी-धाम और गण में सम्मिलित होने का उसे वरदान दिया।

"धनञ्जय काशी आया और व्रत आरम्भ किया। उसके दुःख दूर हो गए और वह समृद्धि-शाली हो गया। विश्वेश्वर के दक्षिण भाग में उसने श्री अन्नपूर्णा के मन्दिर की स्थापना की और नाना प्रकार के व्यञ्जनों से अन्नपूर्णा जी का अन्न-कूट किया।"

इस प्रकार काशी में अन्नपूर्णा देवी की प्रतिष्ठा हुई और सभी तीर्थ-यात्री बड़ी श्रद्धा के साथ आज भी उनका अर्चन-पूजन कर अपने को कृतार्थ मानते हैं।

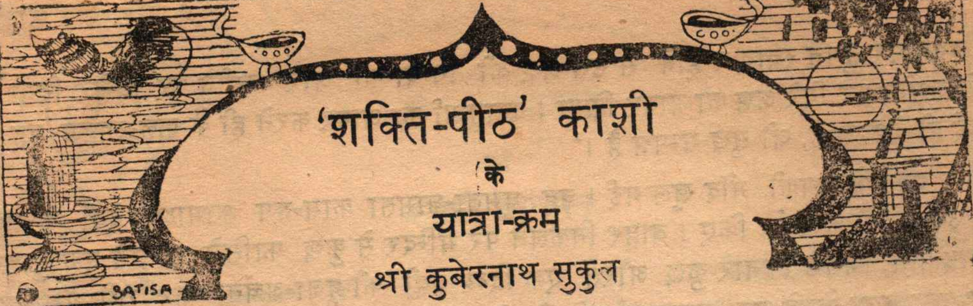

'शक्ति-पीठ' काशी
के
यात्रा-क्रम

श्री कुबेरनाथ सुकुल

तीर्थों में जाने पर प्रधान देवताओं के 'दर्शन-पूजन' के उपरान्त तत्सम्बन्धी यात्राओं का समादर करने की प्राचीन परम्परा रही है और इसी के अङ्ग-स्वरूप प्रत्येक तीर्थ के अपने-अपने 'यात्रा-क्रम' स्थापित हुए हैं। प्राचीन काल में जब 'काशी-क्षेत्र' दस क्रोश (४००० गज) के व्यास का वृत्ताकार था, तब यहाँ के क्या 'यात्रा-क्रम' थे, इसका अब स्पष्ट सङ्केत नहीं मिलता, परन्तु जब से वह शङ्खाकार हो गया है, तब से यहाँ के 'कार्य-क्रमों' का विवेचन पुराणों में मिलता है।

वर्तमान समय में काशी-क्षेत्र तथा वाराणसी-क्षेत्र प्रायः एकीभूत हो गए हैं। 'पञ्च-क्रोशी-यात्रा' को छोड़कर अन्य सभी यात्राएँ काशी या वाराणसी दोनों के अन्तर्गत आती हैं।

यात्राएँ दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे, जिनको बाहर से आए तीर्थ-यात्री करते हैं और दूसरी वे, जो उस तीर्थ के निवासी करते हैं। 'यात्रा-क्रम' इन तीर्थ-वासियों के सुविधानुसार प्राचीन काल से ही निर्धारित रहे हैं और तीर्थ के निवासी कोई-न-कोई यात्रा नित्य करते रहते हैं। 'काशी-खण्ड' के अनुसार ऐसा कोई भी दिन नहीं होना चाहिए, जिस दिन कोई-न-कोई यात्रा न की जाय।

शारीरिक अथवा अन्य किसी कारण से यदि स्वयं यात्रा न कर सके, तो प्रतिनिधि द्वारा भी यात्रा कराई जा सकती है और यदि वह भी सम्भव न हो, तो यात्रा के स्थान में 'जल-कुम्भ' तथा 'मिष्ठान्न' के दान का भी विधान है।

विशिष्ट यात्राएँ लम्बी होती हैं और उनमें समय भी अधिक लगता है। सामान्य यात्राएँ छोटी-बड़ी सभी प्रकार की होती हैं और अपनी शक्ति तथा सुविधा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति कोई भी यात्रा कर सकता है।

काशी—वाराणसी में दो प्रकार के 'यात्रा-क्रम' हैं—१ 'जल-तीर्थों की यात्रा' और २ 'देवायतनों की यात्रा'।

१. जल-तीर्थों की यात्रा

१ एक-तीर्थी यात्रा—"चक्र-पुष्करिणी-तीर्थे स्नातव्यं प्रति-वासरम्" अर्थात् 'चक्र-पुष्करिणी' में नित्य स्नान करे।

२ द्वि-तीर्थी यात्रा—दो प्रकार की है :—१ "प्रातः पञ्च-नदे स्नात्वा मध्याह्ने मणि-कर्णिकाम्।" अर्थात् प्रातः 'पञ्च-गङ्गा-घाट' पर और मध्याह्न में 'मणि-कर्णिका' में।

(२) "प्रातः दशाश्व-मेधे च मध्याह्ने मणि-कर्णिकाम्" अर्थात् प्रातः 'दशाश्वमेध घाट' पर (विशेषतः अहल्याबाई घाट पर) और मध्याह्न में 'मणि-कर्णिका' पर स्नान करे।

३ त्रि-तीर्थी यात्रा—

आदौ प्रयागे तु स्नात्वा पञ्च-गङ्गां ततः परम् । ततः पुष्करिणी-तीर्थे स्नात्वा मुच्यते बन्धनात् ।।

पहले 'दशाश्वमेध घाट' पर 'प्रयाग-तीर्थ' में, फिर 'पञ्च-गङ्गा' घाट पर और अन्त में 'चक्र-पुष्करिणी तीर्थ' में स्नान करे । 'दशाश्वमेध घाट' पर एक सोता पश्चिम से पूर्व में जाकर गङ्गा जी में जिस जगह गिरता है, वही 'प्रयाग-तीर्थ' है ।

४ चतुस्तीर्थी यात्रा—

पुण्ये पिलिप्पिला तीर्थे त्रि-सरित्-परि-सेविते । ततः पञ्च-नदे स्नात्वा मणि-कर्णी-ह्रदे ततः ।।
ततो ज्ञानोद-वाप्यां तु स्नात्वा विश्वेशमर्चयेत् ।

पहले 'त्रिलोचन-घाट' पर, फिर 'पञ्च-गङ्गा घाट' पर, पुनः 'मणि-कर्णिका' में और अन्त में 'ज्ञान-वापी' में स्नान करे । 'ज्ञान-वापी' का जल अब दुर्लभ है, अतः वहाँ केवल मार्जन ही सम्भव है ।

५ पञ्च-तीर्थी यात्रा—यह यात्रा अत्यन्त पुनीत है । विशिष्ट यात्राओं में इसकी गणना होती है । कम-से-कम पन्द्रह सौ वर्षों से यह 'यात्रा-क्रम' इसी प्रकार चल रहा है ।

'**अस्सी घाट**' से प्रारम्भ करके '**दशाश्वमेध घाट**' (विशेषतः अहल्याबाई घाट) पर स्नान करते हुए '**वरुणा-सङ्गम**' जाना होता है । वहाँ सङ्गम में स्नान करके लौटकर '**पञ्च-गङ्गा**' घाट पर और अन्त में '**मणि-कर्णिका** घाट' पर स्नान करने का क्रम है । इन स्थानों पर स्नान करने के साथ-ही-साथ उन स्थानों के विशिष्ट देवायतनों का भी दर्शन-पूजन किया जाता है । इनका क्रम इस प्रकार है—

(१) 'अस्सी-घाट' पर स्नान करने के बाद असि-माधव तथा त्रि-विक्रम (तुलसी-घाट के समीप), असि-सङ्गमेश्वर (रानी सुरसरि के मन्दिर के द्वार पर), लोलार्कादित्य तथा अर्क-विनायक (लोलार्क के पूर्व समीप में ही) का दर्शन-पूजन ।

(२) 'दशाश्वमेध घाट' (विशेषतः अहल्याबाई घाट) पर स्नान तथा दशाश्वमेध (बड़ी शीतला जी के मन्दिर में), बन्दी देवी, शूल-टङ्केश्वर (दशाश्वमेध घाट पर), आदि-वाराह (वाराहेश्वर), सोमेश्वर (मान-मन्दिर घाट) दाल्म्येश्वर (सोमेश्वर के समीप) तथा प्रयाग-माधव (वराहेश्वर के समीप) का दर्शन-पूजन ।

'वरुणा-सङ्गम' में स्नान तथा आदि-केशव, सङ्गमेश्वर, केशवादित्य, ज्ञान-केशव, नक्षत्रेश्वर, वेदेश्वर (ये सब देवता आदि-केशव मन्दिर में अथवा उससे मिले हुए मन्दिरों में हैं) तथा खर्व-विनायक (वरुणा-सङ्गम से नगर की ओर आने के मार्ग पर आदि-केशव के पिछवाड़े) का दर्शन-पूजन ।

(४) 'पञ्च-गङ्गा' घाट' पर (विशेषतः कोनिया-घाट पर) स्नान और बिन्दु-माधव, गभस्तीश्वर तथा मङ्गला गौरी का दर्शन-पूजन ।

(५) 'मणि-कर्णिका-घाट' पर स्नान तथा 'मणि-कर्णी देवी' (चक्र-पुष्करिणी में), सिद्ध-विनायक तथा 'मणि-कर्णिकेश्वर' का दर्शन-पूजन और अन्त में विश्वेश्वर, अन्नपूर्णा तथा ज्ञान-वापी का अर्चन-पूजन करके यात्रा समाप्त होती है ।

(६) **षडङ्ग-तीर्थ यात्रा**—अर्थात् वरुणा-सङ्गम, असि-सङ्गम, ज्ञान-वापी, मणि-कर्णिका, ब्रह्म-ह्रद, (अब लुप्त है) तथा पञ्चगङ्गा घाट पर स्नान करने से 'षडङ्ग-तीर्थी यात्रा' पूरी होती है ।

२. देवी-पीठों की यात्रा

शक्ति-पीठ 'काशी' में देवी-पीठों की यात्राएँ कई प्रकार की होती रही हैं। यथा—नव-शक्ति-यात्रा, नव-चण्डी-यात्रा, नव-दुर्गा-यात्रा, नव-गौरी-यात्रा तथा अष्ट-मातृका-यात्रा। इनमें से 'नव-गौरी-यात्रा' और 'नव-दुर्गा-यात्रा' ही अब प्रचलित है।

(१) **नव-दुर्गा-यात्रा**—यह यात्रा अब दोनों 'नवरात्रों' में विशेष रूप से होती है और 'देवी-कवच' में वर्णित 'नव-दुर्गा' के नियमानुसार प्रत्येक दिन एक देवी का पूजन होता है। यथा—

प्रतिपदा को **१ 'शैल-पुत्री दुर्गा'** (मढ़ियाघाट के वरुणा-तट पर), फिर क्रम से **२ 'छोटी दुर्गा'** अथवा **'ब्रह्म-चारिणी'** (दुर्गा-घाट के ऊपर), **३ 'चित्र-घण्टा दुर्गा'** (चौक के पास लक्खी-चौतरे के सामने), **४ कूष्माण्डा** (बड़ी दुर्गा जी—दुर्गा-कुण्ड पर), **५ स्कन्द-माता** (जैतपुरा में वागीश्वरी मन्दिर में), **६ कात्यायनी** (आत्मा-वीरेश्वर मन्दिर में), **७ काल-रात्रि** (कालिका-गली में), **८ महा-गौरी दुर्गा** (अन्न-पूर्णा जी के समीप राम-मन्दिर में भवानी गौरी तथा अन्नपूर्णा जी) और **६ सिद्धि-दात्री** (सिद्धेश्वरी) का दर्शन-पूजन किया जाता है।

(२) **नव-गौरी-यात्रा**—इस यात्रा में भी नवरात्रों में प्रत्येक दिन एक **'गौरी-पीठ'** का क्रमिक पूजन करने की परम्परा है। चैत्र-नवरात्र में यह यात्रा विशेष रूप से होती है। यथा—

प्रतिपदा को **१ मुख-निर्मालिका गौरी** (गाय-घाट के ऊपर हनुमान जी के समीप), फिर क्रम से **२ ज्येष्ठा गौरी** (सप्त-सागर मुहल्ले में), **३ सौभाग्य गौरी** (आदि-विश्वेश्वर के घेरे में बाँस-फाटक पर), **४ शृङ्गार गौरी** (विश्वनाथ जी में भोग अन्नपूर्णा), **५ विशालाक्षी गौरी** (मीर-घाट पर), **६ ललिता गौरी** (ललिता घाट पर), **७ भवानी गौरी** (अन्नपूर्णा मन्दिर के पास राम-मन्दिर में काली जी तथा जगन्नाथ जी के बीच में प्राचीन अन्नपूर्णा), **८ मङ्गला गौरी** (पञ्च-गङ्गा-घाट के समीप ऊपर) और **६ महा-लक्ष्मी गौरी** (लक्ष्मी-कुण्ड की लक्ष्मी जी) का दर्शन-पूजन किया जाता है।

३. भैरव-यात्रा

शक्ति-पीठ काशी में **'काल-भैरव'** का विशेष स्थान है और इनकी यात्रा नित्य-प्रति की जाती है। रविवार और मङ्गलवार को विशेष रूप से लोग इनके दर्शन करते हैं।

इनके अतिरिक्त आठ और भी भैरव हैं। इनकी यात्रा प्रत्येक मास की अष्टमी तथा चतुर्दशी और रविवार तथा मङ्गलवार को होती है। इनके वर्तमान स्थान इस प्रकार हैं—

१ रुरु-भैरव (हनुमान घाट पर तथा गोमठ के चबूतरे पर), **२ चण्ड-भैरव** (दुर्गा जी पर दुर्गा जी के मन्दिर में), **३ असिताङ्ग-भैरव** (वृद्ध-काल के घेरे में सर्वेश्वर के मन्दिर में), **४ कपाली-भैरव** (लाट भैरव), **५ क्रोधन-भैरव** (कमच्छा पर कामाक्षा देवी के मन्दिर में), **६ उन्मत्त-भैरव** (भीम-चण्डी के पास, देवरा गाँव में), **७ संहार-भैरव** (पाटन दरवाजे के पास गली में) तथा **८ भीषण-भैरव** (भूत-भैरव में) का दर्शन-पूजन किया जाता है।

इनके अतिरिक्त कमच्छा मुहल्ले में **'बटक-भैरव'** का सिद्ध-पीठ है।

४. पञ्च-कोशी यात्रा

'ब्रह्म-वैवर्त पुराण' के 'काशी-रहस्य-खण्ड' में कहा गया है कि सम्भव हो, तो वर्ष में दो बार (दक्षिणायन तथा उत्तरायण सूर्य में), नहीं तो कम-से-कम एक बार 'पञ्च-कोशी-यात्रा' अवश्य करनी चाहिए। इस दृष्टि से 'काशी' की सभी यात्राओं से बढ़कर इस यात्रा का माहात्म्य है।

'पञ्च-कोशी-यात्रा' पाँच या छः दिनों में पूरी होती है और इन दिनों के विश्राम-स्थल निर्धारित हैं। पहले दिन 'कर्दमेश्वर' (कंदवा) में, दूसरे दिन 'भीम-चण्डी' में, तीसरे दिन 'रामेश्वर' में, चौथे दिन 'शिवपुर' में तथा पाँचवें दिन 'कपिल-धारा' में रात्रि-वास होता है। अन्तिम दिन प्रातःकाल 'वृषभ-ध्वज' का पूजन करके यात्रा का अन्तिम चरण प्रारम्भ होता है, जो 'विश्वेश्वर' में तथा 'मुक्ति-मण्डप' में समाप्त होता है।

पहले दिन प्रायः आठ मील, दूसरे दिन भी प्रायः आठ मील, तीसरे दिन बारह-तेरह मील, चौथे दिन शिवपुर तक प्रायः नौ या दस मील, पाँचवें दिन भी यही आठ या नौ मील की यात्रा होती है।

'पञ्च-कोशी यात्रा' काशी-क्षेत्र की प्रदक्षिणा है, जो स्वयं शिव-लिङ्ग-रूप माना गया है। इस यात्रा में 'ब्रह्मचर्यात्मक जीवन अपेक्षित है। मन को स्थिर तथा शिव-मय करने का प्रयास होना चाहिए। यात्रा-काल में मौन रहकर भगवान् शिव का ध्यान करता रहे। एक बार भोजन करना श्रेयस्कर होता है। इस यात्रा का मार्ग निश्चित है। यात्रा समय सड़क के बाईं ओर चले और सड़क पर या दाहिनी ओर मूत्रोत्सर्ग इत्यादि न करना चाहिए।

यात्रा-काल—पुराणों के अनुसार 'पञ्च-कोशी यात्रा' आश्विन, कार्तिक और मार्गशीर्ष एवं माघ, फाल्गुन और चैत्र-वैशाख के महीनों में करने का अधिक माहात्म्य है, परन्तु यह भी उल्लेख है कि जिस समय भी मन में श्रद्धा उत्पन्न हो, उसी समय यह 'पञ्च-कोशी यात्रा' की जा सकती है।

यात्रा-विधि—यात्रा के एक दिन पहले प्रातः-काल 'गङ्गा-स्नान' करके 'मुक्ति-मण्डप' में प्राणायाम करने के बाद, देश-काल-गोत्र आदि का वर्णन करते हुए यात्रा हेतु सङ्कल्प करे।

सङ्कल्प करने के बाद 'ढुण्ढिराज' का पञ्चोपचार-पूजन करे। फिर 'ज्ञान-वापी' में स्नान तथा पञ्च-गव्य से प्राशन करे। सम्भव हो, तो उस दिन उपवास करे, नहीं तो हविष्यान्न का भोजन करे।

यात्रा के दिन प्रातः-काल 'गङ्गा-स्नान' करके 'ढुण्ढिराज' का पञ्चोपचार-पूजन करे। फिर भगवान् 'विश्वनाथ' का पञ्चोपचार-पूजन करे। भगवान् 'विश्वनाथ' का पूजन करने के बाद, उनके निकट 'मनोन्मनी-शक्ति' का पञ्चोपचार-पूजन करे और उनसे 'पञ्च-कोशी यात्रा' हेतु मन-ही-मन अनुमति ले। इसके बाद 'मां अन्नपूर्णा' एवं 'मां भुवनेश्वरी' का पूजन करे और उनसे भी मन-ही-मन यात्रा हेतु अनुमति ले। यदि सम्भव हो, तो सौभाग्यवती ब्राह्मणियों को 'अन्न-दान' करे। इसके बाद 'मुक्ति-मण्डप' में बैठकर अनेक जन्मों के पाप-निवारणार्थ यात्रा हेतु 'सङ्कल्प' तथा 'प्रतिज्ञा' करे।

'प्रतिज्ञा' मौन होकर करे। 'प्रतिज्ञा' के बाद 'भगवान् विश्वनाथ' एवं 'ढुण्ढिराज' की परिक्रमा करके उन्हें दण्डवत् प्रणाम करे तथा उनसे भी यात्रा हेतु अनुमति ले। फिर 'मोद'–प्रमोद'–'सुमुख'–'दुर्मुख'–'गणनाथ'—इन पाँच विनायकों को प्रणाम करे। फिर 'दण्ड-पाणि' एवं पश्चिम द्वार पर स्थित 'काल-भैरव' को प्रणाम करे। इसके बाद मौन रहकर 'मणि-कर्णिका' को जाय और वहाँ स्नान-आचमन करके 'मणि-कर्णीश्वर' का पूजन करे।

'मणि-कर्णिका' से लौटकर 'सिद्धि-विनायक' का पूजन करके, गङ्गा जी के किनारे-किनारे यात्रा प्रारम्भ करे।

पहले 'ललिता-घाट' पर 'काशी-देवी' का ध्यान कर उनकी पूजा करे—

श्यामा षोडश - वार्षिकी सु - करुणा - मूर्तिर्दधाना वरम्,
हस्ताभ्यामभयं च विश्व - जननी विद्येति सा गीयते।
या दृष्टा स्मरणं गताऽपि सततं या कीर्तिता संस्तुता,
या स्पृष्टा नृभिरात्म - तत्त्वममलं दद्याद् ध्रुवं काशिका।।

उक्त ध्यान करने के बाद '**ॐ ह्रीं काशिकायै नमः**' इस मन्त्र से पञ्चोपचार अर्पण करते हुए 'मां काशी देवी' को प्रणाम करे और फिर 'ललिता देवी' तथा 'गङ्गा-केशव' का पूजन कर दण्ड-वत् प्रणाम करके आगे बढ़े। 'मीर-घाट' पर गङ्गा जी में 'जरासन्धेश्वर' का पूजन करके, ऊपर हनुमान जी के मन्दिर में जो 'जरासन्धेश्वर' नामक शिव-लिङ्ग है, उसका पूजन करके पुनः गङ्गा-तट से आगे बढ़े।

'मान-मन्दिर-घाट' पर 'सोमेश्वर' तथा 'दाल्भ्येश्वर' को प्रणाम करके नीचे उतरे और 'दशाश्वमेध-घाट' पर 'शूल-टङ्केश्वर', 'आदि-वाराह', 'दशाश्वमेधेश्वर' तथा 'बन्दी देवी' को प्रणाम करता हुआ, आगे चलकर 'पाण्डेय-घाट' पर 'सर्वेश्वर' को प्रणाम करे। पुनः 'केदार-घाट' पर 'केदारेश्वर' को प्रणाम करे। 'अग्नि-पुराण' के अनुसार यहाँ स्नान-आचमन भी करे। फिर 'हनुमदीश्वर' को प्रणाम करके 'असि-सङ्गम' पर 'सङ्गमेश्वर' को प्रणाम करे। इसके बाद 'लोलार्क' की अर्चना करे और वहीं 'अर्क-विनायक' की पूजा करके पुनः 'असि-सङ्गम' को लौट जाए।

'असि-सङ्गम' से आगे 'पञ्च-क्रोशी-मार्ग' से चलकर जिस स्थान पर पत्थर लगा है, वहाँ से 'दुर्गा जी' को जाय। वहाँ 'दुर्गा-कुण्ड' में स्नान करके 'दुर्ग-विनायक' की पूजा करने के बाद 'दुर्गा जी' की पूजा करे। 'वाशिष्ठ लिङ्ग-पुराण' के अनुसार 'दुर्गा जी' के पूजन के बाद 'रेणुका देवी' की भी पूजा करे। फिर करमाजीतपुर गाँव में जाकर 'विष्वक्-सेनेश्वर' का पूजन करे और वहाँ से लौट कर '**कर्दमेश्वर**' जाए। वहाँ 'कर्दम तीर्थ' में स्नान-आचमन कर कूप-जल का दर्शन करके 'सोमनाथ', 'विरूपाक्ष' तथा 'नील-कण्ठ'-सहित 'कर्दमेश्वर' की पूजा करे। पूजन में उन्हें पञ्च-धान्य (जौ, गेहूँ, चावल, मूंग तथा उड़द) एवं श्वेत तिल चढ़ावे और प्रणाम करके वहाँ पर रात्रि-वास (पहला विश्राम) करे।

प्रातः-काल स्नान-सन्ध्या कर 'कर्दमेश' का पूजन करे और अनुमति लेकर आगे बढ़े। अमरा गाँव में 'नागनाथ', अवड़े गाँव में 'चामुण्डा', 'मोक्षेश्वर' और 'करुणेश्वर' का पूजन करे। इसके बाद देलहमा गाँव में 'वीरभद्र' तथा 'विकटा दुर्गा' की पूजा करे। फिर देउरा गाँव में 'उन्मत्त-भैरव', 'नील-गण, काल-कूट-गण, विमला दुर्गा, महादेव, नन्दिकेश्वर, भृङ्गी रिटि-गणों' और 'गण-प्रिय' की पूजा करे तथा आगे बढ़े। गौरा गाँव में 'विरूपाक्ष', मातल-देई चक में 'यक्षेश्वर', पयागपुर में 'विमलेश्वर', 'मोक्षदेश्वर', 'ज्ञानदेश्वर' तथा असवारी गाँव में 'अमृतेश्वर' की पूजा करते हुए 'गन्धर्व-सागर' पहुँचे।

'गन्धर्व-सागर' में स्नान तथा तर्पण करके 'भीम - चण्डी' देवी को दूध से स्नान करावे और पञ्चोपचार से उनकी पूजा करे। पूजन करते समय उनके कोटि-शक्ति-समन्वित रूप का ध्यान करे। पूजन करने के बाद इच्छानुसार श्राद्ध और ब्राह्मण-सत्कार करे। फिर 'चण्ड-विनायक, रवि-रक्ताक्ष गन्धर्व' और 'नरकार्णव-तारक शिव' का पूजन करके वहीं रात्रि-वास (दूसरा विश्राम) करे।

प्रातः-काल स्नान-सन्ध्या कर 'भीम-चण्डी' की पूजा करे और उनसे आज्ञा लेकर आगे चले। कचनार गाँव में 'एक-पाद-गण' का पूजन करके चावल और श्वेत तिल वहाँ की पृथ्वी पर छिड़के। आगे चलकर हरपुर गाँव में हरैया तालाब के पास 'महा-भीम' तथा हरसोर गाँव में सड़क से कुछ दूर, गाँव के भीतर, 'भैरव' और 'भैरवी' की पूजा करते हुए दीनदयालपुर में 'भूतनाथ' की तथा सिन्धु-सागर पोखरे के समीप लँगोटिया हनुमान के पहले 'सोम-नाथ' की पूजा करे। तदनन्तर जनसा गाँव में 'काल-नाथ', 'कपर्दीश' एवं चौखण्डी गाँव में 'कामेश्वर, गणेश्वर, वीरभद्र' तथा 'चारु-मुख' का पूजन करे।

आगे चलकर भटौली गाँव में 'गणनाथ' को प्रणाम करके 'देहली-विनायक' की अर्चना करे। समीप में ही मन्दिर के पीछे की दीवार में 'षोडश विनायक' की पूजा करे। फिर भुइली गाँव में 'उद्दण्ड विनायक', हीरमपुर में 'उत्कलेश्वर', करौना में 'रुद्राणी की तपो-भूमि' को प्रणाम करके **'रामेश्वर'** जाए। रामेश्वर में वरुणा नदी में स्नान करके तर्पण करे। श्वेत तिल और बिल्व-पत्रादि से 'रामेश्वर' का पूजन करे। तदनन्तर पूर्व में 'सोम-नाथ, भरतेश, लक्ष्मणेश, शत्रुघ्नेश्वर, द्यावा-भूमीश्वर' और 'नहुषेश्वर' को प्रणाम करके, वहाँ रात्रि-वास (तीसरा विश्राम) करे।

प्रातः-काल स्नान-सन्ध्या करके 'रामेश्वर' की पूजा करे और उनसे आज्ञा माँग कर आगे चले। वरुणा नदी को पार कर भुलनी-बारी के पास, शिव-लिङ्गों की पूजा कर, सड़क के दक्षिण करोमा ग्राम में थोड़ी दूर जाकर 'देव-सङ्घेश्वर' की पूजा करे। फिर सदर बाजार में 'पाश-पाणि गणेश' के दर्शनार्थ जाए। फिर वरुणा पार लौटकर खजुरी गाँव में पिसन-हरिया के पास 'पृथ्वीश्वर' का पूजन करे और दीनदयालपुर में 'यूप-सरोवर' (सोना तालाब) में मार्जन करके **'शिवपुर'** जाए। शिवपुर में 'पाण्डव-वापी' के जल में स्नान-तर्पण कर दान-धर्म करे और रात्रि-वास (चौथा विश्राम) करे।

प्रातःकाल 'शिवपुर' में स्नान-तर्पण करके आगे चले और **'कपिल-धारा'** पहुँचे। 'कपिल-धारा' में स्नान-तर्पण तथा श्राद्धादि करके 'वृषभ-ध्वज' का पूजन करे और वहीं रात्रि-वास (पाँचवाँ विश्राम) करे। प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर, 'वृषभ-ध्वज' का पूजन करे और उनकी आज्ञा लेकर 'कपिला-ह्रद' (कपिल-धारा तालाब) और 'ज्वाला-नृसिंह' की प्रदक्षिणा करके वरुणा नदी को पार करे। फिर 'प्रह्लादेश्वर' को जाए, वहाँ पूजन करने के बाद 'त्रिलोचन, बिन्दु-माधव, गभस्तीश्वर, मङ्गला-गौरी, वशिष्ठ-वामदेव और पर्वतेश्वर' की पूजा करता हुआ वापस 'मणि-कर्णिका-घाट' पर आकर 'महेश्वर', सिद्ध-विनायक' और 'विश्वेश्वर' की अर्चना करे। वहाँ ५६ विनायकों का स्मरण करे। फिर मुक्ति-मण्डप' में **'हम कृतार्थ हो गए'**—इस भावना के साथ आकर बैठे।

मन-ही-मन पूजन एवं प्रदक्षिणा किए हुए देवताओं का स्मरण करे कि—**'आपकी कृपा से अनेक जन्मों के पाप-निवारणार्थ मेरी 'पञ्च-क्रोशी यात्रा' पूर्ण हुई। कृपया मुझे धर्म-बुद्धि प्रदान कीजिए।'**

उपर्युक्त प्रकार से प्रार्थना करने के बाद न्यूनातिरिक्त-दोष की निवृत्ति के लिए ब्राह्मणादि-भोजन कराकर स्वयं भोजन करे।

गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों के आधार पर—

पञ्च-कोशी यात्रा का रहस्य

'काश्यां हि काशते काशी'—अर्थात् स्व-देह में जिसने 'काश' का भाव पाया, वह मुक्त हुआ। 'काश' को देह में पाने के लिए, स्व-देह की **'पञ्च-कोशी यात्रा'** करनी पड़ती है।

'पञ्च-कोशी-यात्रा' का अर्थ है एक-एक कोष में **पाँच-पाँच तत्त्व** का भाव देखना। कोष पाँच हैं—(१) **अन्न-मय कोष** (स्थूल शरीर), (२) **प्राण-मय कोष** (लिङ्ग शरीर,) (३) **मनो-मय कोष,** (४) **विज्ञान-मय कोष,** (५) **आनन्द-मय कोष (आत्मा-मय कोष)**। इन पञ्च - कोशों में पञ्च-तत्त्वों (भू, जल, वायु, अग्नि, आकाश) का **'पञ्चात्मिका - भाव'** देखना—यही **'तारिणी-शक्ति'** है। दूसरे शब्दों में पाँच कोषों में २५ का भाव देह के प्रत्येक बन्धन को छुड़ाता है।

'काशी' में 'पञ्च-कोशी यात्रा' में काशी की परिक्रमा करते हुए पाँच पड़ाव करने पड़ते हैं—**१ कर्दमेश्वर (स्थूल), २ भीम चण्डी (प्राण-मय), ३ रामेश्वर (मनो-मय), ४ शिवपुर (विज्ञान-मय), ५ कपिल-धारा** (आत्मा-मय)।

[१] **कर्दमेश्वर**—'पञ्च-कोशी यात्रा' का पहला विश्राम कर्दमेश्वर है। इस विश्राम का तात्पर्य यह है कि 'देह'-रूपी यन्त्र को नियन्त्रण में रक्खो। इसमें नाना प्रकार का कष्ट भरा हुआ है। यह यन्त्र बिगड़कर 'दुःख'-रूपी कीचड़ से भर जाता है। मात्रा-स्पर्श की 'तितिक्षा' से इसे नियन्त्रण में रक्खा जाता है। इसके लिए 'चित्त' में कभी दुःख नहीं रखना चाहिए।

इन्द्रियों से बाह्य विषयों का स्पर्श होता है। यथा–चमड़ी एक इन्द्रिय है। इसका ठंडक-गर्मी से स्पर्श होकर कष्ट या सुख का अनुभव होता है। अपने में इस विषय की स्थापना करेंगे, तो हमारा अस्तित्व इस विषय में घुल जाएगा। यदि अपने में शीत-उष्ण का अनुभव लेकर—उसकी धारणा का अभ्यास करेंगे, तो देह-रूपी यन्त्र की हुकूमत की शक्ति मिलेगी।

विषय के नीचे दब जाने से व्यक्ति मर जाता है, बँध जाता है, परन्तु 'धारणा' से हमारा शरीर चलता है। मरते-मरते भी देह-यन्त्र में 'धारणा' से कम होकर, 'अस्तित्व' को काँपना-डोलना न चाहिए। देह-रूपी यन्त्र भले ही काँपे-डोले। नहीं तो, देह-रूपी यन्त्र कभी भी सिर पर चढ़ बैठेगा। देह-रूपी यन्त्र भले ही दबे, तो दब जाए परन्तु हमारी 'धारणा' न डिगने पाए। यह सदैव ध्यान रखना चाहिए।

'कर्दमेश्वर' की यात्रा कब पूर्ण होती है? कर्दम–कीचड़ पर कब विजय होती है? जब देह-रूपी यन्त्र 'धारणा' पर असर न करे! यही है—'तितिक्षा'।

[२] **भीम-चण्डी**—'पञ्च-कोशी यात्रा' का दूसरा पड़ाव—'भीम - चण्डी' है। इस पड़ाव अथवा विश्राम का तात्पर्य है कि 'प्राण-मय-कोष' भयङ्कर, तीव्र, प्रेत-शक्ति, गति-युक्त है। अतः सावधान रहना चाहिए।

[३] **रामेश्वर**—'पञ्च-कोशी यात्रा' का यह तीसरा विश्राम है। इसका आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े बिन्दु में एक-सा अपने को स्थिर रक्खे। इस पड़ाव में षड्-रिपु छः चोर (१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ माया, ६ द्वेष) हैं, जिनसे सतर्क रहना चाहिए।

[४] **शिवपुर**—यह चौथा विश्राम है। इससे अँधेरे में प्रकाश मिलने का बोध होता है।

[५] **कपिल-धारा**—यह अन्तिम पाँचवाँ विश्राम है। इससे, आगे क्या होता है, यह बतलाने-वाले अन्तरात्मा के दर्शन का बोध होता है।

'शक्ति-पीठ' काशी
के
'देवी-स्थान'

अघोरेश्वरी देवी–पाटन दरवाजा, कामेश्वर के पास।

अन्न-पूर्णा–राज-मन्दिर, पाटन दरवाजा।

अम्बा देवी–मणि-कर्णिका घाट पर उमा देवी।

अमृतेश्वरी–अग्नीश्वर घाट के ब्रह्म-नाल, स्वर्ग-द्वारों पर कुएँ के ऊपर।

अम्बिका गौरी–रत्नेश्वर के पास (अब लुप्त)।

अरुन्धती–अग्नीश्वर घाट, वशिष्ठ-वामदेव मन्दिर में

अरुन्धती-तीर्थ–चौसट्टी घाट के उत्तर, गङ्गाजी में।

अश्वारूढ़ा–जैतपुरा में वागेश्वरी मन्दिर के चौक के आले पर।

आदि-लक्ष्मी (श्री देवी)–लक्ष्मी-कुण्ड पर।

आशापुरी देवी–मैदागिन तालाब के उत्तर, मैदागिन बगीचे से सटी हुई।

उमा-तीर्थ-मणि-कर्णिका घाट पर, चक्र-पुष्करिणी के उत्तर, सटा हुआ गङ्गा जी में।

उर्वशी-कुण्ड–औसानगंज में बाबू शिवनारायण सिंह के मन्दिर के उत्तर। अब पट गया है।

अङ्गारेश्वरी चण्डी–(पञ्चकौड़ी देवी)–१ गोआबाई कुण्ड के पास, २ मुकुट-कुण्ड पर।

अनजानी देवी–कमच्छा में अङ्गारेश्वरी चण्डी।

कामाक्षा देवी–कमच्छा में।

काल-रात्रि दुर्गा–खोवा बाजार की कालिका गली में

काली (महा-रुण्डा की प्राचीन मूर्ति)–दुर्गा जी के पास।

काली देवी–१ अन्नपूर्णा जी के बगल के राम-मन्दिर में। २ लक्ष्मी-कुण्ड में।

काशी देवी–अग्नीश्वर घाट के पास, ललिता घाट पर। काशीपुरा में मन्दिर।

कुब्जा देवी-अग्नीश्वर घाट की शीतला गली के पितामहेश्वर मन्दिर में।

गौरी-कुण्ड–केदारेश्वर के पास, केदार-घाट पर।

गौरी-कूप–काशीपुरा में काशी देवी के मन्दिर के दक्षिण में।

चर्चिका देवी–पञ्च-गङ्गेश्वर से मङ्गला गौरी जाते हुए सीढ़ी चढ़ते ही।

चण्डी देवी–१ खोवा बाजार की कालिका गली में पुरानी भग्न और नई–दो मूर्तियाँ हैं। २ सदर बाजार में।

चामुण्डा देवी–१ भदैनी में लोलार्क के पास, अर्क-विनायक मन्दिर में। २ शिवाला घाट के पास, तुलसी घाट पर।

चित्र-ग्रीवा देवी–केदारेश्वर के पास, भग्नावस्था में।

चित्र-घण्टा देवी–चौक में, लखी चौतरे के सामने, गली में।

छाग-वक्त्रेश्वरी देवी–कपिल-धारा पर।

जानकी-कुण्ड–लक्सा में।

ज्येष्ठा गौरी–कर्ण-घण्टा में, सप्त-सागर के पास, भूत-भैरव पर।

ज्येष्ठा वापी–वहीं (अब लुप्त)।

दीप्ता शक्ति–राम-कुण्ड के पास, सूर्य-कुण्ड पर, साम्बादित्य के पास।

दुर्गा जी–दुर्गा-कुण्ड पर।

दुर्गा-कुण्ड–दुर्गा जी के पास।

द्रौपदी–अन्नपूर्णा-विश्वनाथ जी के समीप, अक्षयवट के पास स्थित। द्रौपदादित्य के पास।

द्वारेश्वरी–(जल-हरेश्वरी) दुर्गा जी के मन्दिर में, दुर्ग-विनायक के दक्षिण के मन्दिर में। प्राचीन स्थान कामाक्षा पर।

ध्रुव-चण्डी देवी–जैतपुरा में, धूप-चण्डी के पास

नर्मदा तीर्थ—चौसट्टी घाट के उत्तर, गङ्गा जी में।
नागेश्वरी—गाय-घाट में।
नारसिंही देवी—पुलस्त्येश्वर के दक्षिण, निर्वाण-नरसिंह के मन्दिर में।
नारायणी देवी—गोपी-गोविन्द के पश्चिम (शीतला घाट)।
निगड़-भञ्जनी देवी—देखें 'बन्दी देवी'।
नील-सरस्वती—अग्नीश्वर घाट, गो-मठ के पास।
नृत्य-शालिनी दुर्गा—बीबी हटिया, काल-भैरव के समीप।
पञ्चकौड़ी देवी—मुकुट-कुण्ड पर अङ्गारेशी देवी।
पार्वती—दुर्गा जी के पास, शिव-विग्रह के साथ।
पार्वती गौरी—त्रिलोचन के पिछवाड़े, आदि-महादेव के मन्दिर में।
पिलप्पिला तीर्थ—त्रिलोचन घाट पर, गङ्गा जी में।
पिशङ्गिला तीर्थ—त्रिलोचन घाट के पूर्वोत्तर-घाट में
बन्दी देवी—दशाश्वमेध घाट पर।
ब्रह्म-चारिणी दुर्गा—दुर्गा घाट।
ब्राह्मी देवी—बाल-मुकुन्द के चौहट्टे में, ब्रह्मेश्वर के मन्दिर में।
भद्र-काली—दारा नगर के पास, मध्यमेश्वर मुहल्ले में, मध्यमेश्वर मन्दिर के उत्तर।
भवानी गौरी—अन्नपूर्णा - विश्वनाथ के पास, वाराणसी की प्रधान देवी अन्नपूर्णा जी तथा काली जी के बीच।
भवानी-तीर्थ—अन्नपूर्णा जी के पास स्थित राम-मन्दिर में, काली जी के सामने की दालान में, फर्श के नीचे, पक्के कुण्ड के रूप में दबा पड़ा।
भागीरथी-तीर्थ—ललिता घाट के सामने, गङ्गा जी में।
भागीरथी देवी—अग्नीश्वर घाट के पास, ललिता घाट पर।
भीम-चण्डी देवी—पञ्च-क्रोशी-मार्ग पर।
भीष्म-चण्डी—शैल-पुत्री दुर्गा के दक्षिण। सदर बाजार की चण्डी देवी १५वीं शताब्दी में 'भीष्म-चण्डी' कही जाती थीं।
मङ्गला गौरी—मङ्गला गौरी घाट।
मणि-कर्णिका तीर्थ—सिन्धिया घाट से गङ्गा-महल घाट तक। चौसट्टी घाट के दक्षिण।
मणि-कर्णी देवी—मणि-कर्णिका घाट पर।
मत्स्योदरी तीर्थ—मछोदरी का पोखरा।
महा-मुण्डा चण्डी—वागीश्वरी देवी।
महा-रुण्डा—लोलार्क के उत्तर पहले थीं। अब दुर्गा जी में 'काली जी' के नाम से हैं।
महा-लक्ष्मी १—आदि केशव के पास। वर्तमान केदारेश्वर के दक्षिण।
महा-लक्ष्मी २—लक्ष्मी-कुण्ड पर।
महा-लक्ष्मी ३—ओङ्कारेश्वर के पास। 'कृत्य-कल्प-तरु' के अनुसार श्री देवी। लुप्त होने के बाद 'आदि-लक्ष्मी' नाम से प्रतिष्ठित।
महा-लक्ष्मी कुण्ड—'लक्ष्मी-कुण्ड' नाम से प्रसिद्ध।
महा-लक्ष्मी तीर्थ—आदि-केशव के पास गङ्गा जी में।
महिष-मर्दिनी—शिवाला घाट के पास, तुलसी घाट पर।
मङ्गला गौरी—मङ्गला गौरी घाट पर।
मन्दाकिनी-तीर्थ—मैदागिन का पोखरा।
मातृ-तीर्थ—दशाश्वमेध पर कुण्ड, जो अब लुप्त है।
मातृ-पीठ की देवियाँ—प्रह्लाद घाट में।
मातरः (मातृकाएँ)—दशाश्वमेध पर शीतला मन्दिर में।
माहेश्वरी देवी—अन्नपूर्णा-विश्वनाथ के पास, विश्वनाथ जी के प्राङ्गण में, विश्वनाथ जी की कचहरी के गलियारे में, उत्तरी दीवाल में।
मुख - निर्मालिका गौरी देवी—गाय घाट के ऊपर, हनुमान जी के मन्दिर में।
मुख-प्रेक्षणी (प्रेक्षणिका)——मङ्गला गौरी मन्दिर, मङ्गला गौरी घाट पर।
योगिनी-तीर्थ—चौसट्टी घाट और राणा-महल घाट के सामने, गङ्गा जी में।
योगिनी - पीठ—राणा-महल में, जहाँ योगिनियाँ स्थापित हैं।
ललिता गौरी—अग्नीश्वर घाट के पास, ललिता

घाट पर। पहले विशालाक्षी के दक्षिण में थीं।

ललिता-तीर्थ—अग्नीश्वर घाट के पास, ललिता घाट पर गङ्गा-केशव के सम्मुख गङ्गा जी में, लक्ष्मी दुर्गा जी के पास।

लक्ष्मी-तीर्थ—लक्ष्मी-कुण्ड या महा-लक्ष्मी कुण्ड का नामान्तर।

वरणा नदी—प्रसिद्ध है।

वरणा-सङ्गम—आदि-केशव के पास, गङ्गा और वरणा का सङ्गम-स्थल।

वाराणसी देवी—त्रिलोचन मन्दिर में, पाटन दरवाजा

वागेश्वरी देवी—जैतपुरा।

वाराही देवी—त्रिपुरा भैरवी घाट पर, मान-मन्दिर घाट के उत्तर।

विकटा मातृका—१ आत्मा-वीरेश्वर मन्दिर में, २ कात्यायन श्री दुर्गा-सङ्कटा जी में ये दोनों स्थान नए हैं, पुराना स्थान 'स्वर्लीनेश्वर' के उत्तर में था।

विधि देवी—अगस्त्येश्वर के आग्नेय कोण में, विधीश्वर के पास।

विरूपाक्षी गौरी—अन्नपूर्णा - विश्वनाथ के पास, विश्वनाथ के प्राङ्गण में, नैऋत्य कोण के छोटे मन्दिर में।

विशालाक्षी गौरी—मीर घाट पर।

विश्वभुजा गौरी—मीर घाट पर, धर्म-कूप के पास।

विश्वा गौरी—अग्नीश्वर घाट, गो-मठ के पास। सिद्धि-विनायक के पिछवाड़े।

शान्ति-करी गौरी—मढिया घाट और ककरहा घाट के बीच, वरणा-तट पर, राज-घाट कोट में।

शिखि-चण्डी—लक्ष्मी-कुण्ड पर, महालक्ष्मी - मन्दिर में पूर्वाभिमुखी देवी।

शिव-दूती—मीर घाट पर, स्वर्लीनेश्वर के पास, प्रह्लाद घाट में।

शीतला—१ शीतला गली के पितामहेश्वर मन्दिर में कुब्जा देवी। २ दशाश्वमेध शीतला मन्दिर में।

शृङ्गार गौरी—अन्नपूर्णा-विश्वनाथ के पास, विश्वनाथ जी के प्राङ्गण में, ज्ञान-वापी के विश्वेश्वर-मन्दिर के शृङ्गार-मण्डप में, लुप्त हो जाने से 'भोग-अन्नपूर्णा' नाम से विश्वनाथ मन्दिर में, ईशान कोण में।

शैलेश्वरी—मढ़िया घाट पर शैल-पुत्री दुर्गा। हनुमान फाटक में।

श्रीमुखी गुहा—ओङ्कारेश्वर टीले के नीचे (अब लुप्त)।

सङ्कठा जी—अग्नीश्वर घाट।

सरस्वती—दुर्गा जी के पास।

सरस्वती देवी—गो-मठ में।

सारस्वत कूप—राज घाट किले के पश्चिम, महा-देव के प्राचीन स्थान के पास (अब लुप्त)।

सारस्वत तीर्थ—मणि-कर्णिका के उत्तर, सम्भवतः गो-मठ के सामने, गङ्गा जी में।

सिद्ध-माता—सिद्ध-माता की गली, बीबी हटिया।

सिद्ध-योगेश्वरी—अग्नीश्वर घाट पर सिद्धेश्वरी-मन्दिर। 'सिद्धेश्वरी' नाम से प्रसिद्ध।

सिद्धि-लक्ष्मी देवी—मणि-कर्णिका घाट पर, सिद्धि-विनायक के पिछवाड़े।

सीता-कुण्ड—लक्सा में।

सौभाग्य गौरी—बाँस फाटक के आदि - विश्वेश्वर मन्दिर में, उत्तर की कोठरी में।

स्कन्द-माता दुर्गा—जैतपुरा में।

स्वप्नेश्वरी—१ हरिश्चन्द्र घाट के पास, बादशाह-गंज में, २ लोकार्क के उत्तर।

हय-कण्ठी देवी—लक्ष्मी-कुण्ड के 'काली-मठ' में, खिन्नी के पेड़ के नीचे।

हर-सिद्धि देवी—मणि-कर्णिका घाट पर, सिद्ध-विनायक के पूर्व में।

त्रिलोक-सुन्दरी देवी—अग्नीश्वर घाट की शीतला गली में, पिता-महेश्वर के द्वार पर शीतला देवी।

त्रिपुरा भैरवी—त्रिपुरा भैरवी घाट पर।

ज्ञान-वापी—विश्वनाथ जी के उत्तर में।

'रुद्र-यामल तन्त्र'

में

'शक्ति-पीठ' काशी

'रुद्र-यामल तन्त्र' के अन्तिम दो पटलों में 'शक्ति-पीठ' काशी का जो वर्णन किया गया है, उससे प्रतिपादित होता है कि भारत का यह एक विलक्षण 'शक्ति-पीठ' है। ८६ वें पटल की समाप्ति पर 'पटल-परिचय' निम्न पंक्ति से मिलता है—

श्रीरुद्र-यामले उत्तर-तन्त्रे महा-तन्त्रोद्दीपने सिद्ध-मन्त्र-प्रकरणे षट्-चक्र-प्रकाशे, भैरवी-भैरव-सम्वादे, वाराणसी-पीठ-नाथान्तर्यजनं नाम एको-न-नवति-तमः पटलः ॥

वाराणसी-पीठ के 'नाथों' का 'अन्तर्यजन'-विधान उक्त पटल में वर्णित है। संक्षेप में उसका विवरण देना ज्ञान-वर्द्धक होगा।

'वाराणसी-पीठ' के स्वरूप का वर्णन करती हुई 'श्रीआनन्द-भैरवी' कहती हैं कि यह 'पीठ' भ्रू-मध्य में मण्डला-कार-रूप में, जो मातृका-यन्त्र-स्वरूप है, शोभायमान है। कोटि स्वयम्भू लिङ्गों से यह पीठ सुशोभित है, जिससे अत्यन्त सिद्धि-दायक एवं अनन्त पुण्य-प्रद यह तीर्थ सारे संसार में विख्यात है। कोटि लिङ्गों में प्रमुख हैं 'योगेश्वर शिव', जिनका ध्यान निम्न प्रकार करना चाहिए—

अष्टोत्तर - शतानन्द - विग्रहं मन्मथान्तकम् । वराभय - करं सिद्धं, डम्बरुच्छत्र - धारिणम् ॥
त्रिशूल-मुद्गराद्यस्त्र-खेटकादि-विभूषितम् । पञ्च - मुखं दश - भुजं शङ्ख - माला - कपालकम् ॥

उक्त प्रकार 'योगेश्वर भगवान् शिव' का ध्यान कर 'वाराणसी-पीठ' की दसों दिशाओं में क्रमशः दस-दस शिव-स्वरूपों का ध्यान करना चाहिए, जो रक्त-वर्ण हैं और विद्युत् के समान उज्ज्वल हैं। ये सभी काशी-पुरी की रक्षा करते हैं।

पूर्व-दिशा में गौर-वर्ण एवं स्वर्णालङ्कारों से सुशोभित दस स्वरूपों के शुभ नाम हैं—१ जटिल, २ काल, ३ उन्मत्त, ४ क्रोध-राज ५ सदा-शिव, ६ दधीचि-नाथ, ७ सुवाशी, ८ प्रमथेश्वर, ९ यज्ञनाथेश्वर और १० अयुतेश्वर-वल्लभ।

आग्नेय कोण में—१ वज्र-धर, २ महा-काल, ३ कपिलेश्वर, ४ पञ्चानन, ५ योगि-नाथ, ६ घर्घ-रेश, ७ पिनाक्-धृक्, ८ पशु-पाल, ९ क्षेमद और १० ब्रह्म-नाथ।

दक्षिण दिशा में—१ वीर, २ शूलेश्वर, ३ सिद्धेश्वर, ४ श्रीपार्वतीश्वर, ५ गणनाथेश्वर, ६ शम्भु, ७ प्रचण्ड, ८ दक्ष-यज्ञहा, ९ काशी-पति और १० पशु-पति।

नैऋत कोण में—१ कामेश्वर, २ दक्षिणामूर्ति, ३ ईशान, ४ वामनेश, ५ मनोहर, ६ वामदेव, ७ बाण-नाथ, ८ रघुवीरेश्वर, ९ काम-राजेश्वर और १० काम-कलेश।

पश्चिम में—१ अरुणेश्वर, २ योगेन्द्र, ३ काशीराज, ४ असुरान्तक, ५ त्रिशूली, ६ वरुणेश, ७ काल, ८ काम-दायक, ९ कालाग्नि-रुद्र और १० भद्रेश।

वायव्य कोण में—१ महा-रुद्र, २ वात-नाथ, ३ रुद्रात्मा, ४ रौद्र-रूपक, ५ रूप-नाथ, ६ हनुमान, ७ सूर्येश, ८ वसुधेश्वर, ९ वासुकी-वल्लभ और १० सत्य-पति।

उत्तर में—१ उत्तरास्य, २ कुबेरेश्वर, ३ ईश्वर, ४ पञ्चाधार, ५ पारमेश, ६ पर-हंस, ७ प्रभा-कर, ८ अनन्तेश, ९ काम-रक्ष, १० रत्नेश्वर और ११ उमा-पति ।

ईशान कोण में—१ वैश्वानरेश, २ विश्वामित्रेश्वर, ३ ईशान, ४ मायेश, ५ बटुकेश, ६ रमेश्वर, ७ कालान्तकेश, ८ काम, ९ महा-काम-पुरीश्वर, १० श्मशान-वासि देवेश और ११ सर्व-रूप-प्रकाशक ।

वाराणसी के मध्य-पीठ में—१ मृत्युञ्जय, २ मोक्षद, ३ शिवेश, ४ भैरवेश्वर, ५ भूत-नाथ, ६ भूत-कर्ता, ७ क्षेत्र-पाल, ८ परापर, ९ मञ्जु-घोषेश्वर, १० काल-दमन, ११ कौशलेश्वर, १२ मुनि-नाथ और १३ वर्ण-माली ।

वाराणसी के ऊर्ध्व-पीठ में—१ ब्रह्मेश, २ ब्रह्म-कुलेश, ३ ब्रह्म-लिङ्ग, ४ विधीश्वर, ५ ब्रह्माण्ड-भेदक, ६ आत्माराम, ७ वक्रेश्वर, ८ बलीश, ९ भार्गवेश, १० सदानन्देश्वर, ११ हर, १२ कृष्णेश्वर और १३ राम-नाथ ।

उक्त प्रकार दसों दिशाओं में 'अकाल-तारक' उक्त समस्त रुद्रों का ध्यान-पूर्वक मानस पूजन कर इन्हीं रुद्रों द्वारा सम्पूजिता निम्न महा-विद्याओं का ध्यान-पूजन करना चाहिए—१ त्रिपुर-सुन्दरी, २ त्रिपुर-भैरवी, ३ भुवनेशी, ४ अन्न-पूर्णा, ५ मातङ्गी, ६ विन्ध्य-वासिनी, ७ छिन्न-मस्ता, ८ बगला, ९ त्रिकूटा, १० पञ्चमी, ११ कालिका और १२ तारिणी ।

वहीं यह भी लिखा है कि उक्त देवियों का बाह्य पूजन करना भी आवश्यक है और यह पूजन 'कुल-पूजा' के ही क्रम से होना चाहिए । इस पूजन के द्वारा एक मास के भीतर 'योग-सिद्धि' प्राप्त होती है ।

९० वें पटल के अन्त में परिचय-बोधक पंक्ति निम्न प्रकार है—

श्रीरुद्र-यामले उत्तर-तन्त्रे महा-तन्त्रोद्दीपने सिद्ध-मन्त्र-प्रकरणे षट्-चक्र-काशे भैरव-भैरवी-सम्वादे 'वाराणसी'-पञ्च-पीठ-प्रकाशो नाम नवति-तमः पटलः ॥

अर्थात् 'शक्ति-पीठ' काशी 'पञ्च-पीठात्मक' है । ये पाँच पीठ 'हाकिनी' देवी के हैं । पञ्च-देवों से विभूषित 'पञ्च-कोणात्मक' पीठ के पाँचों कोनों में पाँच महा-भूत अपने बीजों सहित स्थित हैं । यथा—१ पूर्व-कोण में 'लं पृथ्वी-तत्त्व', २ उसके दाईं ओर 'यं वायु-तत्त्व', ३ उसके नीचे 'वं जल-तत्त्व', ४ सबसे नीचे 'रं अग्नि-तत्त्व' और ५ शेष कोण में 'हं आकाश-तत्त्व' ।

उक्त पाँच पीठों में पञ्च-प्राण-शक्तियाँ भी विराजमाना हैं । यथा—१ प्राणेशी, २ अपाना, ३ समानेशी, ४ उदानेशी और ५ व्यान-माता । इन पाँचों को नित्य 'पञ्च-तत्त्व' अर्पित करने का विधान है अर्थात् १ शुद्धासव, २ शुद्ध-मांस, ३ शुद्ध-मीन, ४ शुद्ध-मुद्रा और ५ शुद्ध-कुल-चन्दन ।

वहीं 'वाराणसी-चक्र' का विलक्षण वर्णन है, जिसमें १ राकिनी, २ लाकिनी, ३ काकिनी, ४ शाकिनी और ५ हाकिनी—इन पञ्च-शक्तियों का ध्यान भगवान् शिव के समीप किया जाता है । इस चक्र में परा-शक्ति से समाक्रान्त स्वयम्भू-लिङ्ग विराजमान हैं ।

यह विवरण यहाँ अत्यन्त संक्षेप में दिया गया है । विस्तार से वर्णन अधिकारी विद्वान् साधक ही कर सकते हैं । संक्षिप्त विवरण प्रकाशित करने का हमारा उद्देश्य यह है कि साधकों का ध्यान 'शक्ति-पीठ' काशी के विलक्षण स्वरूप के प्रति आकृष्ट हो और इस दिशा में समुचित रूप से शोध किया जाय, जिससे इस सर्व-सिद्धि-प्रद—**'शक्ति-पीठ काशी'** के दर्शन-पूजन द्वारा सर्वतोमुखी लोक-कल्याण सम्भव हो सके ।

• • •

सम्पादकीय

काशी का शक्ति-पीठत्व

काशी की ख्याति बाबा विश्वनाथ अर्थात् भगवान् शिव की तीन लोक से न्यारी नगरी के रूप में रही है। जगद्गुरु शङ्कराचार्य की प्रख्यात उक्ति––'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं' के अनुसार 'शक्ति' से युक्त होकर ही 'शिव' प्रभावी होते हैं अर्थात् 'शिव' में से 'इ'––शक्ति के निकल जाने पर मात्र 'शव' ही रह जाता है। फिर भी आज तक काशी के 'शक्ति-पीठत्व' के प्रति किसी भी भारतीय शोध-कर्त्ता मनीषी का ध्यान नहीं गया है।

कलि-युग में 'शक्ति' की उपासना ही श्रेयस्कर है। काशी के निवासियों के नित्य सनातन आचार में भी शक्ति-साधना के ही तत्त्वों की प्रधानता रही है किन्तु समाज के निर्माता साहित्यकारों ने इस तथ्य के प्रति आज तक उदासीनता ही दिखाई है। उदाहरण के लिए 'उ० प्र० हिन्दी-संस्थान' द्वारा प्रकाशित एवं डा० राजबली पाण्डेय द्वारा सम्पादित 'हिन्दू-धर्म-कोश', पृष्ठ-संख्या ७२०, मूल्य ४५) रु० के पृष्ठ १८३ पर 'काशी'-सम्बन्धी विवरण द्रष्टव्य है। उसका मुख्यांश निम्न प्रकार है—

…"संसार के इतिहास में जितनी अधिक प्राक्कालिकता, नैरन्तर्य और लोक-प्रियता 'काशी' को प्राप्त है, उतनी किसी भी नगर को नहीं। यह लगभग ३,००० वर्षों से भारत के हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ-स्थान तथा उसकी सम्पूर्ण धार्मिक भावनाओं का केन्द्र रही है। यह परम्परागत धार्मिक पवित्रता तथा शिक्षा का केन्द्र है। हिन्दू-धर्म की विचित्र विषमता, सङ्कीर्णता तथा नानात्व और अन्तर्विरोधों के बीच यह सूक्ष्म शृङ्खला है, जो सबको समन्वित करती है। केवल सनातनी हिन्दुओं के लिए ही नहीं, बौद्धों और जैनों के लिए भी यह स्थान बड़े महत्त्व का है। बुद्ध ने बोधगया में ज्ञान प्राप्त होने पर सर्व-प्रथम यहीं उसका उपदेश किया था, जैनियों के तीन तीर्थङ्करों का जन्म यहीं हुआ था।…"

ध्यान देने की बात है कि सम्पादक ने सबको समन्वित करनेवाली 'सूक्ष्म शृङ्खला' को स्पष्ट नहीं किया है, जो वस्तुतः 'शक्ति-साधना' की भावना के अतिरिक्त कोई अन्य तत्त्व नहीं है। 'काशी' के इतिहास का वर्णन करते हुए आगे लिखा गया है कि––

"इसे वाराणसी अथवा बनारस भी कहा जाता है। पिछले सैकड़ों वर्षों से इसके माहात्म्य पर विपुल साहित्य की सर्जना हुई है। पुराणों में इसका बहुत विस्तृत वर्णन

मिलता है ।...'काशी' प्राचीन काल से ही एक राज्य रहा, जिसकी राजधानी 'वाराणसी' थी ।...ऐल (चन्द्र-वंश) के क्षत्रवृद्ध राजा ने काशी-राज्य की स्थापना की । उपनिषदों में यहाँ के राजा अजात-शत्रु का उल्लेख है, जो 'ब्रह्म-विद्या' और 'अग्नि-विद्या' का प्रकाण्ड विद्वान् था । 'महा-भारत' के अनुसार काशी में धन्वन्तरि के पौत्र दिवोदास ने भद्रश्रेण्य के १०० पुत्रों को मार डाला और वाराणसी पर अधिकार कर लिया । भगवान् शिव ने अपने गण निकुम्भ को भेजकर उसका विनाश करवा दिया । हजारों वर्षों तक 'काशी' खण्डहर रही । फिर भगवान् शिव स्वयं आकर निवास करने लगे । तब से 'काशी' की पवित्रता बढ़ गई ।...बुद्ध-युग में 'काशी' एक बड़ा नगर था...राज्य भी था ...वैदिक धर्म का तीर्थ-स्थान तथा शिक्षा का केन्द्र भी था । ...'वाराणसी' शताब्दियों तक ५ नामों से जानी जाती रही है—१ वाराणसी, २ काशी, ३ अविमुक्त, ४ आनन्द-कानन और ५ श्मशान या महा-श्मशान ।...काशी 'काश्' - धातु से निष्पन्न है । 'काश्' का अर्थ है ज्योतित होना या करना । 'काशी' नाम इसलिए है कि यह मनुष्य के निर्वाण-पथ को प्रकाशित करती है या भगवान् शिव की परम सत्ता यहाँ प्रकाश करती है ।..."

उक्त वर्णन से 'काशी' के शक्ति-पीठत्व का आभास स्पष्ट रूप से मिलता है । आगे के वर्णन से इस 'आभास' की और भी पुष्टि होती है—

"...'वरणा' और 'असी' नदियों के बीच स्थित होने के कारण 'वाराणसी' नाम पड़ा । 'जाबालोपनिषद्' में 'अविमुक्त' को 'वरणा' और 'नासी' के मध्य बताया है । 'वरणा' को त्रुटियों का नाश करनेवाली तथा 'नासी' को पाप का नाश करनेवाली बताया है । इस प्रकार 'काशी' पाप से मुक्त करनेवाली नगरी है । 'लिङ्ग-पुराण' के अनुसार 'अवि' का अर्थ पाप है और काशी पापों से मुक्त है, इसलिए नाम 'अवि-मुक्त' पड़ा है । ...भगवान् शङ्कर को 'काशी' अत्यन्त प्रिय है, उन्होंने इसे 'आनन्द-कानन' नाम से अभि-हित किया है । ...अन्तिम नाम 'श्मशान या' 'महा-श्मशान' इसलिए है कि वह निधनो-परान्त मनुष्य को संसार के बन्धनों से मुक्त करानेवाली है ।...श्मशान (प्रेत-भूमि) अशुद्धि का द्योतक है किन्तु 'काशी' की 'श्मशान-भूमि' को सर्वाधिक पवित्र माना गया है ।... 'श्म' का तात्पर्य है 'शव' और 'शान' का अर्थ है 'लेटना' । प्रलय होने पर महान् आत्माएँ यहाँ 'शव' या 'प्रेत' के रूप में रहती हैं, अतः इसका नाम 'महा-श्मशान' है । ...भगवान् शिव स्वयं कहते हैं कि 'अविमुक्त' प्रसिद्ध 'प्रेत-भूमि' है ।..."

शाक्त-धर्म के ज्ञाता पाठक 'आनन्द', 'श्मशान', 'प्रेत', 'शव' आदि शब्दों से भले प्रकार समझ सकते हैं कि केवल एक 'शक्ति-पीठ' से ही इनकी ध्वनि निकल सकती है। यह खेद की ही बात मानी जायगी कि लगभग चार पृष्ठों के 'काशी'-सम्बन्धी विवरण में 'हिन्दू-धर्म-कोशकार' ने इसके 'शक्ति-पीठत्व' का नाम तक नहीं लिया है। यही भ्रामक स्थिति 'काशी'-सम्बन्धी प्रायः अन्य समस्त कृतियों में देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए पं० कुबेरनाथ सुकुल द्वारा लिखित एवं लगभग २५ वर्ष पूर्व प्रकाशित दो पुस्तकें 'वाराणसी का आधिदैविक वैभव' और 'काशी के यात्रा-क्रम' में कहीं 'शक्ति-पीठ' के रूप में काशी का उल्लेख नहीं है। हाँ, 'यात्रा-क्रम' के अन्तर्गत 'देवी-पीठों की यात्राएँ' अवश्य वर्णित हैं। इन दोनों पुस्तकों से प्रस्तुत विशेषाङ्क 'शक्ति-पीठ काशी' की प्रामाणिक सामग्री एकत्र करने में हमें बड़ी सहायता मिली है। इसके लिए हम प्रयाग-निवासी स्व० पं० ओङ्कारनाथ मिश्र, आई. ए. एस. एवं टेढ़ी नीम, वाराणसी के निवासी पं० कालीप्रसाद मिश्र के विशेष आभारी हैं, जिन्होंने उक्त अप्राप्य पुस्तकें भेजकर हमारे कार्य को सरल बनाने की महती कृपा की।

'शक्ति-पीठ काशी' विशेषाङ्क को हम काशी के गुप्त एवं लुप्त-प्राय शक्ति-साधना-केन्द्रों एवं शाक्त साधकों के चित्रों से अलंकृत करना चाहते थे और कुछ रहस्य-पूर्ण विवरण भी देना चाहते थे, किन्तु साधनों के अभाव में हम वैसा नहीं कर सके। काशी-पति श्री विश्वनाथ एवं काशी की अधीश्वरी मां अन्नपूर्णा एवं मां विशालाक्षी की कृपा हुई, तो भविष्य में कभी इस कामना की पूर्ति हो सकेगी। जो कुछ हमसे हो सका, हमने 'काशी' के 'शक्ति-पीठत्व' पर प्रकाश डालने का प्रयास इस विशेषांक द्वारा किया है। पाठकों का इससे यदि कुछ भी ज्ञान-वर्द्धन हो सका, तो हम अपने को कृत-कृत्य मानेंगे।

यहाँ हम काशी के प्रसिद्ध 'कवि-शिरोमणि' एवं आचार्य द्विवेदी-युग के निःस्पृह साहित्यकार स्व० पं० जगन्नारायण देव शर्मा 'कवि-पुष्कर' शास्त्री के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं, जिन्होंने हमारे अनुरोध पर, ९६ वर्ष की अपनी वृद्धावस्था में, काशी के २५ सिद्ध महात्माओं के सम्बन्ध में अपने ऐतिहासिक संस्मरण लिखकर भेजने की महती कृपा की। कदाचित् आपके जीवन की यह अन्तिम मौलिक कृति है। इस कृति से 'चण्डी' के इस विशेषाङ्क की गरिमा द्विगुणित हो गई है। आपकी पुण्य स्मृति को हमारा शतशः नमन।

साधनोपयोगी श्रेष्ठ पुस्तकें

पूजा-रहस्य

हिन्दुओं की पूजा का व्याख्यात्मक अनूठा विवरण

मूल्य १५-०० रु०

सचित्र
मुद्राएँ एवम् उपचार

हिन्दुओं की पूजा में प्रयुक्त होनेवाली, मुद्राओं एवं पूजोपचारों (आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा आदि) का प्रामाणिक वर्णन ।

मूल्य १०-०० रु०

सविधि
श्री कुण्डलिनी साधना

षट्-चक्रों एव कुण्डलिनी-योग का सचित्र विवेचन

मूल्य १५-०० रु०

मन्त्र-कोष

पञ्च-देव (गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, भगवती दुर्गा), दश-महा-विद्या (काली, तारा, श्रीविद्या आदि) तथा विविध देवताओं के मन्त्रों का अनुपम कोष, बीज-कोषादि

मूल्य ५५-०० रु०/सजिल्द मूल्य ६५-०० रु०

रजि०सं० ३२६८१/५७ दिसम्बर, ८६-जनवरी, १६६० रजि० सं० ए० डी० ६६

सपत्नीक 'कवि-पुष्कर शास्त्री' पं० जगन्नारायण देव जी शर्मा

श्री महा-विद्या मन्दिर, पाण्डेय घाट, वाराणसी (उ० प्र०)

६६ वर्ष की वृद्धावस्था में

'काशी के कतिपय सिद्ध सन्त की गाथा'

अपनी स्मृति के बल पर, सर्वथा निःस्पृह भाव,

लोक-हिताय की दृष्टि से लिखकर भेजने की कृपा करनेवाले

आपको शतशः नमन !

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, परा बाणी प्रेस, इलाहाबाद—६